वर्षम् - १०, अङ्कः - १२४

ओ३म्

अश्विन-कार्तिकमासः-२०७५/ अक्टूबरमासः-२०१८

आर्ष-ज्योतिः

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास का द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् का प्रथम राष्ट्रिय अधिवेशन हैदराबाद में सोल्लास सम्पन्न

प्रसारणकार्यालयः

श्रीमद् दयानन्दार्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम् पौन्धा,
देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ७५७६४६६६५६ चलवाणी - ०६४१११०६१०४

ई-मेल : arsh.jyoti@yahoo.in Website: www.pranwanand.org

श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् के प्रथम अधिवेश के कुछ दृश्य

स्थान - श्री नरेन्द्र भवन, हैदराबाद :: दिनांक-३० सिम्बर २०१८

❖ ओ३म् ❖

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास

का

द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

आश्विन-कार्तिकमासः, विक्रमसंवत्-२०७५ / अक्टूबरमासः-२०१८, सृष्टिसम्वत्-१,९६,०८,५३,११९

वर्षम् - १० :: अङ्कः - १२४ मूल्यम्- रु. ५ प्रति, वार्षिकम्-५०

❖संरक्षका:❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती

कै. रुद्रसेन आर्यः

प्रो.पीयूषकान्तदीक्षितवर्याः

श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

❖परामर्शदातृमण्डलम्❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः

प्रो. महावीरः

आचार्ययज्ञवीरवर्याः

श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖मुख्यसम्पादकौ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः

डॉ. रवीन्द्रकुमारः

❖कार्यकारी सम्पादकः❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖व्यवस्थापका:❖

ब्र. अनुदीपार्यः

ब्र. कैलाशार्यः

❖कार्यालय:❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्

दूनवाटिका-२, पौन्धा,

देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी-०९४१११०६१०४, ८८१०००५०९६

website: www.pranwanand.org

E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

विषय-क्रमणिका

विषयः	पृष्ठः
सम्पादकीय	२
क्या वृक्षों में जीव हैं	४
श्राद्ध, श्रद्धा है या आडम्बर?	९
आध्यात्मिकता रहित भौतिक सुखों से युक्त...	१०
सरकारों के साथ आवाम को भी आगे आना होगा..	१२
आधुनिक शिक्षा की नींव तथा उसका प्रभाव	१६
योगदर्शनशिक्षणम्	१९
श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् का...	२०

आपके द्वारा दिया गया दान आयकर की धारा ८० जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशनतिथि-३ अक्टूबर २०१७ :: डाकप्रेषणतिथि-८ अक्टूबर २०१७

सम्पादक की कलम से...

आखिर आरक्षण क्यों...?

सर्वविदित है कि आरक्षण हम सभी के लिए बहुत बड़ा रोग है परन्तु फिर भी सन् १९५० में आरक्षण को शामिल किया गया। आखिर आरक्षण की आवश्यकता क्यों हुई? ऐसी कौन-सी मजबूरी थी, जिसके कारण कांग्रेस को इसे स्वीकार करना पड़ा, जबकि उसके सामने अनुसूचित जातियों को अंग्रेजों द्वारा दिये गये आरक्षण के विरोध में सन् १९३५ में महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन किया था। सन् १८९२ में अंग्रेजों ने मुसलमानों को आरक्षण दिया। उसके बाद सन् १९२० में ईसाइयों को विशेषाधिकार दिया गया। इन व्यवस्थाओं के पीछे अंग्रेजी हुकुमत की कूटराजनीति थी, क्योंकि देश में बढ़ती हुई राष्ट्रियज्वाला के विरोध में वह ईसाइयों और मुसलमानों को खड़ा करना चाहती थी। तब ब्रिटिश सरकार ने सन् १९३५ में अनुसूचित जातियों के लिए भी आरक्षण की कूटनीति लागू करने की कोशिश की तब महात्मा गाँधी ने इसके भावी राष्ट्रघाती परिणाम को समझ लिया था, जिस कारण आमरण अनशन किया। उस समय डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे नेता आरक्षण के समर्थक थे किन्तु राष्ट्रिय नेताओं के दबाव के कारण डॉ. भीमराव अम्बेडकर दब गये, जिस कारण से गाँधी के आमरण अनशन को तुड़वाने में सभी राष्ट्रिय नेता सहायक बनें और ब्रिटिश सरकार को आरक्षण नीति वापस लेनी पड़ी।

यदि यह आरक्षण नीति उस समय लागू हो जाती तो देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् मुसलमानों के समान अनुसूचितजाति व जनजातियाँ भी अपने लिए अलग राष्ट्र की मांग करती, क्योंकि मुसलमानों को विशेषाधिकार दिये तो उन्होंने सोचा कि हमारे लिए एक अलग देश हो, जिसका परिणाम पाकिस्तान के रूप में आप सभी को विदित है। यदि अनुसूचित जातियों व जनजातियों को आरक्षण दे दिया होता तब न जाने देश के कितने टुकड़े होते?

हम केवल भावुक होकर राष्ट्र के अहित को जन्म दें, यह तो उत्तम नहीं है। हमें यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उच्चवर्ग के लोगों ने निम्नवर्गीय लोगों पर बहुत अत्याचार व अन्याय किया है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अनुसूचित जाति व जनजातियों की वर्तमान पीढ़ी से आरक्षण मिले, आखिर पूर्वजों की गलतियों का भुगतान नई पीढ़ी से क्यों? अब उस प्रकार का समाज नहीं है, जो अन्याय व अत्याचार के गहरे गर्त में संलिप्त हो। जातिगतस्तर पर अब कोई किसी के साथ अन्याय व अत्याचार नहीं करता। आज सवर्ण के लड़के व लड़कियाँ अनुसूचित जाति व जनजातियों की लड़कियों तथा लड़कों से विवाह कर रहे हैं। एक दूसरे के घर का खाना खा रहे हैं, सुख-दुख में सम्मिलित हो रहे हैं, पुनः आरक्षण की आवश्यकता कहाँ रह जाती है? और वो भी जातिगतस्तर पर? यह तो पुनः उसी भेद-भाव के काल को जन्म दिया जा रहा है, जिसके कारण आरक्षण की शुरुआत हुई थी।

हे ईश्वर! हम सबको सद्बुद्धि दे। न जाने हम कब अपने विवेक के आधार पर निर्णय कर पायेंगे? आज जो नये-नये नियम-उपनियम बन रहे

हैं, ये सब राजनीतिक प्रपंच हैं और हम सब इनमें फँसते जा रहे हैं।

वर्तमान में भारतवर्ष में आरक्षण को लेकर विरोध व समर्थन की एक बाढ़ आयी हुई है। विरोधी लोग अपने-अपने तर्कों के आधार पर अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं तो समर्थक अपनी दलीलें प्रस्तुत कर रहे हैं। दोनों ही पक्षों की बातें अपने स्तर पर सही हैं किन्तु दोनों ही पक्ष सर्वहित को समझकर विचार नहीं कर रहे। यदि सर्वहित को दृष्टि में रखकर विचार किया जाये तो आरक्षण सम्बन्धी समस्या का समाधान स्वत: ही हो जायेगा। आरक्षण को राजनीति से जोड़कर राजनीतिज्ञ दोनों ही वर्गों में द्वन्द करा रहे हैं। क्योंकि दोनों ही वर्ग यदि जुड़ जायेंगे तो राजनीतिज्ञों की वोटबैंक समाप्त हो जायेगी। इस कारण से ये आरक्षण की नीति को और अधिक लोभात्मक व हिंसात्मक रूप से प्रदान करते जा रहे हैं। १९५० में जब संविधान में आरक्षण नीति को लागू किया गया तब आरक्षण को एक सामाजिक बुराई मानकर यह कहा गया था कि ये अधिनियम केवल १० वर्षों के लिए है किन्तु हुआ क्या? आज निरन्तर आरक्षण को १० वर्षों के बाद विस्तार दे दिया जाता है।

भारतीयता को तोड़ने में सबसे बड़ा यदि किसी का हाथ है तो वह है आरक्षण का। क्योंकि भारतवर्ष में आरक्षण जाति के आधार पर है, इस कारण से जातिवाद को बहुत बल मिला है और मिलता जा रहा है। एक जातिवाला दूसरे जातिवाले से ईर्ष्या और द्वेष की भावना रखता है। अत: एकता की भावना आ ही नहीं सकती। परस्पर विरोधात्मक ही रूप दिखता रहेगा। धर्म व जाति के आधार पर आरक्षण बिल्कुल भी उचित नहीं है। आरक्षण के समर्थक कह रहे हैं कि अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के आधार पर आरक्षण होना चाहिए। जबकि आरक्षण विरोधी अपने तर्कों के साथ कह रहे हैं कि जाति के आधार पर मिलने वाला आरक्षण अब तो समाप्त हो ही जाना चाहिए। वोटबैंक की राजनीति पिछले ७१ वर्षों से चली आ रही है। प्रत्येक राजनीतिक दल ने इसका लाभ लिया है। कोई दल नहीं चाहता है कि जाति के आधार पर मिलने वाला आरक्षण अब समाप्त हो जाये। मेरे अनुसार आरक्षण अब आर्थिकरूप से कमजोरवर्ग के लोगों को मिले ताकि इसका लाभ प्रत्येक वर्ग को प्राप्त हो सके। प्रत्येक दिव्यांग जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग हैं, उनको जातिगत स्तर पर आरक्षण न मिले, क्योंकि दिव्यांग की कोई जाति नहीं होती। प्रत्येक अनाथ जिसका कोई सहारा न हो, जिसके परिवारिकजन किसी हादसे का शिकार हो गये हों, उसको आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए। देश पर कुर्बान होने वोले परिवार को आरक्षण का कोटा मिले। इससे अतिरिक्त आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को आरक्षण मिलना चाहिए अर्थात् आरक्षण जाति के आधार पर न मिलकर आर्थिकरूप से कमजोरवर्ग को एवं आवश्यकतानुरूप होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक देश में विद्रोह होता ही रहेगा यदि समाधान चाहते हो तो इस प्रचलित आरक्षण नीति को खत्म करो या परिवर्तित करो।

- शिवदेव आर्य...
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मो.-८८१०००५०९६

प्रजा का कार्य ही शासक का कार्य है, प्रजा का सुख ही उसका सुख है, प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है तथा प्रजा के हित में ही उसका हित है। उसका सर्वस्व प्रजा के निमित्त है, अपने लिए कुछ भी नहीं है। **- महाभारत**

क्या वृक्षों में जीव हैं...?

❑ डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार...✍

सम्पादकीय टिप्पणी - **'क्या वृक्षों में जीव है?'** इस विषय पर भूतकाल में आर्य समाज के दो समादरणीय विद्वानों पूज्य स्वामी दर्शनानन्द जी तथा पण्डित गणपति शर्मा के मध्य शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ अनिर्णीत ही रहा था। इसलिए इस विषय पर पुनः गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। चिन्तन मनुष्य का धर्म है, अतः चिन्तन की धारा चलती रहनी चाहिए।अभी भी आर्यसमाज में दोनों पक्षों को मानने वाले व्यक्ति विद्यमान हैं तो क्यों न इस विषय को निर्णय की ओर ले जाया जाए? दोनों पक्षों के अपने-अपने तर्क एवं प्रमाण हैं। हमें सत्य ग्राहिता के लिए यत्नशील होना चाहिए, क्योंकि 'सत्य के ग्रहण और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।' इसी उद्देश्य से **'क्या वृक्षों में जीव है?'** इस शृंखला का प्रारम्भ किया गया। इस शृंखला के प्रथम लेख में अक्टूबर २०१६ की पत्रिका में डॉ. रघुवीर वेदालंकार जी तथा जनवरी २०१७ के अंक में ब्र. गौरव आर्य ने तर्क एवं प्रमाणों के द्वारा इस विषय का निष्पक्ष रूप से विवेचन किया। मार्च २०१७ के अंक में मेरठ के श्री अङ्ग्रेश पाल आर्य द्वारा हिन्दी में लेख प्रस्तुत किया गया। अब अगस्त २०१८ के अंक में डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार जी श्री अङ्ग्रेश पाल आर्य के लेख का समालोचनात्मक पक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्य व्यक्ति भी पक्षपात शून्य, दुराग्रह रहित होकर किसी भी पक्ष के सम्बन्ध में अपने विचार दे सकते हैं, तभी निर्णय के निकट पहुँचा जा सकेगा, क्योंकि **'तर्कप्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः'**। आपके पक्ष को भी पत्रिका में विना किसी दुराग्रह के प्रकाशित किया जायेगा। हम आपके पक्ष की प्रतीक्षा में हैं.... **-शिवदेव आर्य**

अक्टूबर २०१६ में छपे वृक्षों में जीव विषयक मेरे लेख के उत्तर में दो लेख ब्र. गौरव तथा श्री अङ्ग्रेश पाल आर्य के छपे हैं। ब्र. गौरव तो हमारे शिष्यों में से ही हैं। संस्कृत में उत्तर देने के लिए शुभाशीष। इसकी समीक्षा बाद में की जायेगी। पहले अङ्ग्रेश जी के लेख को लेते हैं। अङ्ग्रेश जी का लेख उन्हें स्वाध्यायी बतला रहा है। मुझे यह लिखने में भी संकोच नहीं कि वे मेरे से अधिक विद्वान् हैं तथापि लेख के प्रारम्भ में जिस गर्व एवं गर्ह मिश्रित भाषा का प्रयोग उन्होंने किया है, वह विद्वत्तानुरूप नहीं है। मेरा नाम लिए विना ही आप लिखते हैं कि कुछ विद्वान् महर्षि की मान्यताओं का खण्डन करते हैं तथा वे **'नास्तिको वेद निन्दकः'** तथा आत्माहन्ताजनों के समान असूर्यलोकों के योग्य है। मैंने न तो महर्षि की मान्यताओं का खण्डन किया तथा न ही वेद की निन्दा। महर्षि के कथन को अपने पक्ष में ही उद्धृत किया है। मैं इन दोनों का सुदृढ़ भक्त हूँ। पुनरपि अङ्ग्रेश जी मुझे असूर्य लोकों में भेजना चाहें तो उनकी मर्जी। हाँ, यह उनके अधिकार की चीज नहीं है। वे और भी कुछ लिखें पुनरपि मैं शालीन भाषा का ही प्रयोग करुँगा।

मैं पूर्व लेख में लिख चुका कि वृक्षजीवविषयक चर्चा करना हार-जीत के लिए नहीं, अपितु सत्यासत्य के निर्णयार्थ है। वह तभी होगा जबकि लेखकों द्वारा प्रतिपक्षी के तर्कों का भी शालीन, सप्रमाण उत्तर दिया जाए, छल-कपट, वितण्डा का प्रयोग न किया जाए। मैं ऐसा ही करूँगा किन्तु अङ्ग्रेश जी ने इसका भी निर्वहन नहीं किया। उनके प्रमाणों की परीक्षा की जाती है।

आर्ष-ज्योतिः, मार्च अंक, पृ. १०-

१. आपने ऐतरेयोपनिषद् का प्रमाण दिया कि -

'चेतराणि चाण्डजानि च जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि' –ऐतरेयोपनिषद्–३/५/३

इसमें कहीं भी नहीं लिखा है कि वृक्षों में जीव है। उत्पत्ति के प्रकार यहाँ बतलाये गये हैं। वृक्षादि उद्भिज हैं किन्तु उनमें जीव की चर्चा यहाँ नहीं की गयी।

२. कठोपनिषद् के प्रमाण से कहा गया है कि कोई जीव स्थावर योनियों को जाते हैं। मेरा प्रश्न है कि वृक्ष की तरह पर्वत भी स्थावर है तो क्या पर्वतों में भी जीव हैं?

३. छान्दोग्योपनिषद् का यह प्रमाण दिया गया है – **तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्यण्डजं जीवजमुद्भिजम् इति'** (छान्दोग्योपनिषद्–६/३/१) यहाँ अङ्ग्रेश जी ने भूतानां का अर्थ प्राणी करके लिखा है कि पृथिवी को फोड़कर निकलने वाले वृक्षादि भी जीव हैं। मेरी इससे इसलिए असहमति है कि किसी भी वाक्य का अर्थ प्रकरणानुसार ही किया जा सकता है, प्रकरण बिना नहीं। यदि इसी छठे अध्याय के द्वितीय खण्ड को देख लिया जाता तो बात स्पष्ट हो जाती। द्वितीय खण्ड में प्रकरण चलाया गया है कि असत् से सत् की उत्पत्ति होती है या सत् से सत् की? ऋग्वेद के दशम मण्डल के नासदीय सूक्त में भी यही प्रकरण है। यहाँ सम्पूर्ण जड़–चेतन जगत् की उत्पत्ति का प्रसङ्ग है, केवल चेतन जीवों की उत्पत्ति का नहीं। उपनिषद् में सम्पूर्ण द्वितीय खण्ड में यही प्रकरण चलाकर तृतीय खण्ड में ऋषि निर्णय देता है कि सम्पूर्ण यूवों के तीन ही उत्पत्तिबीज हैं। अतः यहाँ भूतानाम् को अर्थ जड़–चेतन दोनों प्रकार के पदार्थ है, केवल चेतन जीव ही नहीं। पृथिवी आदि के लिए महाभूत छन्द का प्रयोग होता ही है।

४–५. छान्दोग्य. के ही ६/११/१ तथा ६/११/२ जिन प्रमाणों को अङग्रेश जी ने उद्धृत किया है, उनसे वस्तुतः वृक्षों में जीव की सत्ता सिद्ध होती है तथा लेखक इस मान्यता से इस कारण असहमत है कि उपनिषदों की भाषा अति गूढ़ तथा साङ्केतिक भी है। सर्वत्र उसके शाब्दिक अर्थ नहीं किये जा सकते। यथा – इसी उपनिषद् के 6/2/3 में लिखा है कि उस तेज ने ईक्षण किया कि मैं बहुत हो जाऊँ। उपनिषद् ६/२/४ में उसी जल ने ईक्षण किया है कि मैं बहुत हो जाऊँ। क्या तेज था जल में ईक्षण करने की शक्ति है? यह चेतन का अर्थ है, यहाँ की भाषा आलङ्कारिक है। इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिए।

६–७. आगे आपने मनुस्मृति के १/४६ तथा १/४७ दो श्लोक अपने पक्ष में उद्धृत करके छल पूर्वक लिखा है – 'ये उद्भिज स्थावर जीव वृक्ष कहलाते हैं, श्लोक यह है –

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः॥

–मनु.–१/४७

श्लोक का अर्थ इतना ही है कि बिना फूल वाले तथा फल वाले तो वनस्पति संज्ञक हैं। यथा – गूलर आदि। जिन पर फूल तथा फल दोनो आते हैं, वे वृक्ष कहलाते हैं। अङ्ग्रेश जी ने श्लोकार्थ में जीव शब्द छलपूर्वक अपनी ओर से जोड़कर लिखा है – ये उद्भिज स्थावर जीव वृक्ष कहलाते हैं। इसी प्रकार –

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।
औषधयः फलयाकान्ताः बहुपुष्पफलोपगाः॥

–मनु.–१/४६

श्लोक में ओषधि तथा उद्भिज का भेद बतलाया गया है कि उद्भिज भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाले स्थावर वृक्षादि बीज तथा शाखा से उत्पन्न होते हैं, जबकि फलों के पकने पर सूख जाने वाले ओषधि संज्ञक है। यथा – गेहूँ आदि। यहाँ भी अङ्ग्रेश जी ने अपनी ओर से जीव शब्द जोड़कर सब स्थावर जीव लिख दिया। एक विद्वान् को ऐसे छल से वचना चाहिए।

८. आगे आपने मनुस्मृति १/४९ का श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें वृक्षों को स्पष्टरूप में **'सुखदुःखसमन्विताः'** कहा गया है। यह तो आपके पक्ष का ही खण्डन करता है। आगे आपके सत्यार्थ प्रकाश के कई प्रमाण देकर लिखा है कि स्वामी जी सुषुप्ति दशा में जीव को सुख–दुःख की प्राप्ति नहीं मानते। अतः वृक्षों की भी सुषुप्ति अवस्था होने के कारण उन्हें सुख–दुःख नहीं होते। मनुस्मृति के पूर्वकथन तथा इस कथन में स्पष्ट तथा विरोध है तदापि आपने दोनों को ही अपने पक्ष में उद्धृत कर दिया। स्पष्ट रूप में लिखें कि आप इन दानों पक्षों में से किसे ठीक

समझते हैं?

९. आगे आपने फिर मनुस्मृति १२/९ श्लोक को उद्धृत किया है –

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्य जातिताम्॥

–मनु.–१२/९

अर्थात् शरीर से किये जाने वाले कर्म दोषों के कारण मनुष्य स्थावर को प्राप्त करता है। यहाँ पर आपने वृक्षादि शब्द आपनी ओर से जोड़कर 'वृक्षादि स्थावर का जन्म' लिख दिया। प्रश्न है कि पर्वत भी तो स्थावर है। क्या जीव वहाँ भी विद्यमान है? मनुस्मृति तो वैसे भी वर्तमान रूप में पूर्ण प्रामाणिक नहीं है। इसमें पर्याप्त प्रक्षेप है। कौन किस योनि को प्राप्त करता है, इसे सिवाय परमेश्वर के कोई जान भी नहीं सकता। मनु इसके द्रष्टा–स्रष्टा नहीं है योगदर्शन तथा उसके व्यासभाष्य में भी इसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया, केवल जाति, आयु तथा भोग के रूप में वर्गीकरण मात्र किया गया है।

१०. आगे आपने सुश्रुत का यह प्रमाण दिया है –

'लोको हि द्विविधः स्थावरो जङ्गमश्च तत्र चतुर्विधो भूत ग्रामः स्वेदजाण्डजोद्भिजजरायुजसंज्ञः'

–सुश्रुत सूत्र स्थान अध्याय १/२२

यहाँ पर प्रयुक्त भूतग्राम का अर्थ आपने प्राणिसमूह किया है, जो अशुद्ध है। इस प्रमाण में समस्त लोक(संसार) को दो भागों–स्थावर तथा जंगम में विभक्त करके भूतों की उत्पत्ति चार प्रकार की बतलायी है। भूत का अर्थ है भवतीति अर्थात् जो भी उत्पन्न होता है। उत्पन्न तो वृक्ष–वनस्पति आदि भी होते हैं किन्तु इतने मात्र से इनमें जीव तो सिद्ध नहीं हो जाता।

११. आगे आपने फिर आचार्य यक्रसाणी को उद्धृत करके कहा है कि सूर्यमुखी का फूल सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्य की ओर रहता है। इससे उसमें चक्षु इन्द्रिय का अनुमान किया जाता है। इस कथन से वृक्षों में जीव सिद्ध नहीं होता। यदि सूर्यमुखी का फूल सूर्य के साथ–साथ घूमता है तो और सभी पौन्धों तथा वृक्षों के फूल क्यों नहीं घूमते? जीव तो सभी में विद्यमान है। कोई भी धर्म समस्त जाति पर लागू होता है। सूर्य सभी को गर्मी तथा चन्द्रमा शीतलता देता है। ऐसा नहीं कि कुछ प्राणियों को तो गर्मी लगे तथा कुछ को न लगे। यह तो पुष्पादि का स्वभाव है कि किसी में कोई क्रिया होती है तो अन्य में अन्य। यथा – रात्री में कमलिनी का फूल बन्द हो जाता है, अन्य फूल नहीं होते। इसी प्रकार सूर्यमुखी फूल में ही यह गुण है कि वह सूर्य के साथ–साथ घूमे, अन्य फूलों में यह गुण नहीं।

१२. आगे आपने अन्य प्रमाण इस प्रकार दिये हैं –

१. लवली मेघ शब्द को सुनकर फलवती होती है। २. गीदड़ आदि की चर्बी की गन्ध से बिजौरा नींवू फलयुक्त होता है। ३. मछली की चर्बी के आस्वादन से बैंगन में अधिक फल लगते हैं। ४. युवति के चरणप्रहार से अशोक वृक्ष कुसुमित हो जाता है।

अङ्ग्रेश जी ने भी इन्हें केवल पढ़–पढ़ाकर ही लिखा है, प्रत्यक्ष करके नहीं। हाँ, मैं अवश्य दावे के साथ कहता हूँ कि युवति के चरणप्रहार से अशोक वृक्ष में फूल नहीं आते हैं तो अङ्ग्रेश जी प्रत्यय करके दिख लाएँ, अन्यथा ऐसे निराधार प्रमाण देने में सावधानी बरतें। महाविद्यालय गुरुकुल ज्वालापुर में एक आम्रवृक्ष जिसमें फल नहीं लगते थे, उसके पास यज्ञ करने से फलवान् हो गया था, यह सत्य घटना है तो क्या ऐसा कहें कि यह वृक्ष यज्ञ की गन्ध सूंघने से फलवान् हो गया। वृक्षादि का अपना–अपना स्वभाव होता है कि कौन किस द्रव्य से बढ़ता है, किससे सूखता है। ये सब प्राकृतिक नियम हैं। इससे वृक्षों में जीव सिद्ध नहीं होता।

आगे अङ्ग्रेश जी ने बहुत ही मज़ेदार प्रश्न करके स्वयं ही समाधान भी कर दिया है। यथा – १. प्रश्न – वृक्ष योनि में अशुभकर्म का भोग कैसे प्राप्त होता है? स्वयं ही इसका उत्तर देते हैं कि यदि किसी मनुष्य या प्राणी के जीवनयापन की सभी क्रियाएँ बन्द कर दी जाएँ जो उसे दुःख होगा। यही उसकी योगप्राप्ति की अवस्था है। यदि वृक्षों की भी यही स्थिति है तो वृक्षों को सुख–दुःख की प्राप्ति आपने अपने आप ही सिद्ध कर दी, क्योंकि जीवन–यापन की क्रियाएँ बन्द होने से व्यक्ति महान् कष्ट

का अनुभव करेगा। आप वृक्षों को भी ऐसा ही मान रहे हैं। यह आपका बहतो व्याघात है ही, स्वपक्ष की हानि भी है। दूसरी बात वृक्षों की जीवन-यापन की क्रियाएँ बन्द भी तो नहीं हुयी हैं तभी तो उनमें जीवन है। वे बढ़ते हैं फलते-फूलते हैं। जीवनयापन की समस्त क्रियाएँ बन्द होने से कोई भी मनुष्य जीवित ही नहीं रह पायेगा। अत: यह दृष्टान्त ही यहाँ अनुपयुक्त है। दृष्टान्त देते समय थोड़ा सोच लेना चाहिए।

२. महर्षि ने त्रयोदश समुल्लास में स्पष्ट रूप में वृक्षों को जड़ लिखा है। इसकी व्याख्या अङ्ग्रेश जी अज्ञानी के रूप में कर रहे हैं, धन्य हैं। वृक्षों जीवात्मा के विषय में तो विवाद है किन्तु वृक्षों को अज्ञानी तो आज तक किसी ने भी नहीं कहा। आपकी इस नवीन व्याख्या को नमन। यहाँ पर आप पूरे प्रसङ्ग को दबा गये। सत्यार्थप्रकाश त्रयोदश समुल्लास की आयत ८१ में प्रसङ्ग है कि ईसा ने गूलर के पेड़ को कहा कि तुझमें फिर कभी फल न लगेंगे। इस पर गूलर का पेड़ तुरन्त सूख गया। इसी की समीक्षा में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं कि 'भला! जो वृक्ष जड़ पदार्थ है, उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया'। आप थोड़ा सत्यग्राहिता से देखते तो विदित हो जाता कि यहाँ जड़ तथा चेतन की बात हो रही है। चेतन प्राणी ही शाप को सुन सकता है, जड़ नहीं, क्योंकि वह चेतना तथा जीव से रहित है। वृक्ष जड़ होने से ईसा की बात नहीं सुन सकता था। यहाँ ज्ञानी-अज्ञानी का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। अज्ञानी भी सुन तो सकते हैं। आपकी नवीन व्याख्या से यहाँ जड़ का अर्थ अज्ञानी किया जाए तो वृक्ष को ईसा की बात सुननी तो चाहिए थी। ईसा का शाप भी तभी फलवान् था। कृपया ऐसी मनमौजी व्याख्या न किया करें।

अन्त में अङ्ग्रेश जी ने न्याय दर्शन के पञ्चावयव से अपनी बात को इस प्रकार सिद्ध करते हैं - वृक्षों में जीवात्मा है। जीवन देखे जाने से। सोये हुए मनुष्य की तरह। हममें अति व्याप्ति दोष है। देखिए प्रतिज्ञा वृक्षों में जीवन है, जीवात्मा नहीं। हेतु - वृक्षों में वृद्धि देखे जाने से। उदाहरण - गर्भस्थ बालक की तरह।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि गर्भस्थ शिशु में जीव का प्रवेश सप्तम मास में ही होता है। गर्भोपनिषद् में भ्रूण की प्रथमावस्था से लेकर उत्पत्ति तक की पूरी स्थिति बतलाकर कहा गया है - **'सप्तमे मासे जीवने संयुक्तो भवति।'** अर्थात् वह भ्रूण सप्तम मास में ही जीवात्मा से संयुक्त होता है। इससे पूर्व उसमें जीवन तो है, जीव नहीं। वह भ्रूण माता के शरीर से ही बढ़ता है। तब तक कोई प्रक्रिया भी नहीं करता। सप्तम मास में जीव से संयुक्त होने के पश्चात् ही वह हिलने-डुलने में समर्थ होता है। हाथ-पैर भी चलाता है। किसी भी सन्तान वाली माता से आप हम रहस्य को पूछ लीजिए। मैंने पूर्व लेख में भी इसे लिखा था। आप उसे दबा गये।

आपने प्रश्न भी उढ़ाया है कि जीवन किस द्रव्य का नाम है? स्वयं ही उत्तर भी देते हैं कि परम सत्ता परमात्मा का गुण मानने से अति व्याप्ति दोष आयेगा। बन्धु! हमने कब कहा है कि यह परमात्मा का गुण है। आप अपने उत्तर को जबरदस्ती हमारा उत्तर क्यों बना रहे हैं? हमारा तो केवल यह कहना है कि जीवन तथा वृद्धि का साहचर्य है। जिस द्रव्य में भी अन्दर से वृद्धि होगी, वहाँ जीवन है, जीव नहीं।

अङ्ग्रेश जी ने कई बार महर्षि दयानन्द की इस बात को भी उद्धृत किया है कि स्वामी ने वृक्षों में सुषुप्ति होने के कारण सुखदु:ख का निषेध किया है। मैं इस पर कोई टिप्पणी नहीं करुँगा। मैंने केवल सत्यार्थ प्रकाश का वह स्थल उद्धृत किया है, जहाँ स्वामी जी ने स्पष्ट रूप में वृक्ष को जड़ कहा है। वहाँ जड़ का अर्थ जीव रहित है, अज्ञानी नहीं। ऐसी द्वैध की स्थिति में हमें अति सावधानी से काम लेना चाहिए। महर्षि की किसी भी उक्ति को तोड़-मरोड कर स्वेच्छा उसकी व्याख्या अपने पक्ष में नहीं करनी चाहिए। हाँ, यदि उससे कहीं असहमति हो तो उसे भी स्पष्ट रूप में नम्रता पूर्वक सामने रख देना चाहिए। स्वामी जी वस्तुत: ऋषि थे। हम सब भी मननशील प्राणी हैं तथा जिस प्रकार किसी भी शास्त्र पर गहन चिन्तन किया जा सकता है, महर्षि की मान्यताओं पर भी चिन्तन-मनन किया जा सकता है, ऐसा मेरा मानना है। इससे न तो हमारी

ऋषिभक्ति कम होती है तथा न ही महर्षि पर कोई आक्षेप जाता है। उन्होंने कहीं भी नहीं कहा कि मेरी बातों को आँखें मूंद कर विना विचारे ही स्वीकार कर लिया जाए। यदि कहीं स्वामी जी की मान्यताओं के विपरीत हमारी मान्यता बनती है तो उसका हमें अधिकार है। उसकी स्थापना में कोई दोष नहीं। हाँ स्थापना का उद्देश्य स्वामी जी का खण्डन मात्र नहीं होना चाहिए। एक उदाहरण देता हूँ -

महर्षि दयानन्द ने नियोग प्रसङ्ग में वेद के यम-यमी सूक्त का एक मन्त्र उद्धृत करके उसकी व्याख्या नियोग पक्ष में ही की है। इससे कुछ लोगों की धारणा है कि स्वामी जी यम-यमी को पति-पत्नी मानते हैं। प्रतीत ऐसा ही होता है, किन्तु अनेक विद्वानों की तरह मेरी भी सुस्पष्ट धारणा है कि यम-यमी सूक्त में इसका स्वरूप भाई-बहिन का ही है, पति-पत्नी का नहीं। स्वामी जी ने जिस नियोग प्रसङ्ग में इसे उद्धृत किया है, यह मन्त्र वहाँ का है भी नहीं। मैं अभी भी अपनी इस मान्यता पर दृढ़ हूँ साथ ही आह्वान है कि कोई यम-यमी को पति-पत्नी सिद्ध करके तो दिख लाए। इतना कहने मात्र से मैं महर्षि का विरोधी तथा नास्तिक नहीं हो जाता कि जिसे अङ्ग्रेश जी जातिबहिष्कृत करने की बात कह रहे हैं। परमेश्वर ने व्यक्ति को विचार स्वतन्त्रता प्रदान की है। हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए। हाँ, यदि इसी आधार पर मैं महर्षि का खण्डन करते फिरुँ तो यह मेरा पागलपत या अज्ञान ही है। अब प्रकृत लेख पर आते हैं।

आपने सत्यार्थ प्रकाश से निलोति का प्रसङ्ग दिया है कि जैन लोग हरे शक-पात, कन्दमूल में अनन्त जीव होने से उनकी हिंसा के भय से हरे शाक-पात नहीं खाते। महर्षि ने इसे अविद्या की बात कहा है, किन्तु हरे शाक मूली-शलजम, गोभी आदि के पत्तों में वस्तुतः छोटे-छोटे जीवाणु चिपटे रहते हैं। न उन्हें कोई भी देख सकता है। इसलिए ऐसी दोषयुक्त शाक-पातों को जैन तो क्या अन्य लोग भी नहीं खाते। न ही खाने चाहिए।अब आप ही बतायें कि इस सत्य को माना जाए या महर्षि के निलोति खण्डन को? इस प्रकार स्वामी दयानन्द को महर्षि मानकर भी आप्तपुरुष मान कर भी अपने गुरु आचार्य मानकर भी उनकी किसी बात से असहमति रखने मात्र में व्यक्ति नरक गामी नहीं बन जाता।

आपने एक वेदमन्त्र भी उद्धृत किया है, जिसमें प्रयुक्त '**अस्थुर्वृक्षा ऊर्धस्वप्नाः**' का अर्थ आपने 'ऊपर की ओर मुख करके सोने वाले' किया है। इस मन्त्र से वृक्षों में जीव की सत्ता सिद्ध होती है या नहीं, इस पर तो बाद में विचार किया जायेगा, पहले आप यह बतलाइए कि स्वप्ना का अर्थ सुषुप्ति किस आधार पर किया जा रहा है। मन्त्रार्थ यही बनेगा कि ऊपर को मुख करके स्वप्न लेने वाले। स्वप्न में तो सुख-दुःखों का अनुभव सर्वसिद्ध है। आप वृक्षों में सुषुप्ति में सुखदुःख का अभाव मान रहे हैं। किसी भी कोश में स्वप्न में तो सुख-दुःखों का अनुभव सर्वसिद्ध है वृक्षों की सुषुप्ति के पक्ष में उद्धृत ही नहीं किया जा सकता।

आपके लेख से विदित होता है कि आपका स्वाध्याय अध्ययन पर्याप्त है किन्तु वह गुरुमुख से प्राप्त किया हुआ नहीं है या आपने जानबूझ कर तथ्यों को छिपाने तथा अपने अनुसार व्याख्या करने का यत्न किया है। नाद, जल्प तथा वितण्डा की परिभाषा की आपने अपने शब्दों में ही की है। ये परिभाषाएँ न्याय दर्शन से मेल नहीं खाती। आप लिखते हैं - वाद कथा मैत्रीपूर्वक होती है। गौतम मुनि का सूत्र है - **प्रमाणतर्कसाधनोपातम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः....वादः**। (न्यायसू. १/२/१) जहाँ प्रमाण तथा तर्क के द्वारा साधन=स्वपक्ष की स्थापना तथा उपालम्भ=परपक्ष का खण्डन किया जाए, वह वाद है। यहाँ मैत्री का कोई उल्लेख ही नहीं है। अपने पूरे लेख में आपने प्रमाण तो उद्धृत किये हैं किन्तु तर्क का आश्रय कहीं नहीं लिया। बाद में परपक्ष का निराकरण भी आवश्यक है, आपने ऐसा भी नहीं किया। आप स्वयं लिखते हें कि पूर्वप्रकाशित (मेरे) लेख की समीक्षा करना विषयान्तर होगा। बन्धु! यह विषयान्तर नहीं, अपितु बाद का अनिवार्य अङ्ग है। इसीलिए मैंने आपके पूरे लेख का उत्तर शास्त्रीय तथा सभ्य भाषा में दिया है। आपको भी ऐसा करना चाहिए था। जल्प का लक्षण आप लिखते हैं 'जय-पराजय की भावना से होती है। यह न्यायदर्शन के अनुसार नहीं है।

वहाँ पर जल्प का लक्षण है - **'यथोक्तोपन्न छलजातिनिग्रहस्थासाधनोपलम्भो जल्पः'** (न्यायसू. -१/२/२) वाद भी जय-पराजय की भावना से होता है। जल्प में इतना अन्तर है कि इसमें छल-जाति तथा निग्रहस्थान का प्रयोग किया जाता है, वाद में नहीं। यही दोनों का भेद है। आपने न्यायदर्शन को छोड़कर अपनी ही परिभाषा गढ़ली। विद्वान् को ऐसा छल नहीं करना चाहिए।

आपने अपने लेख का उपसंहार भी इस प्रकार किया है 'महर्षि की मान्यताओं पर श्रद्धा रखने वाले भी लेकिन किन्तु परन्तु आदि शब्दों का सहारा लेकर अपनी मान्यताएँ बना लेते हैं।' मैंने कहीं भी किन्तु परन्तु के माध्यम से घुमा-फिरा कर कुछ नहीं कहा है। अपनी बात सुस्पष्ट रूप में अपने लेख में रखी हैं। आपने यह भी कहा है कि ऐसा करना मनुष्य के पतन का कारण है। बन्धु! मनुष्य का पतन या उत्थान उसके विचारों तथा आचरण पर निर्भर करता है, शास्त्रीय विचार विभिन्नता पर नहीं। एक व्यक्ति महर्षि तथा अन्य शास्त्रों पर श्रद्धा रखते हुए भी आचारण भ्रष्टता के कारण पतित हो सकता है जबकि दूसरा व्यक्ति पूर्ण सदाचार युक्त तथा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करते हुए यदि किसी महर्षि या किसी भी ऋषिप्रणीत शास्त्र के साथ शास्त्रीय असहमति रखता है तो क्या आप उसे पतित मान लेंगे। यदि ऐसा है तो पं. गणपति शर्मा तथा स्वामी दर्शनानन्द, इन दोनों में से एक व्यक्ति अपने अनुसार अवश्य ही पतित था, क्योंकि दोनों का शास्त्रार्थ वृक्षजीव विषयक पक्ष-विपक्ष में ही तो हुआ था। दोनों ने ही महर्षि को अपने पक्ष-विपक्ष मे उद्धृत भी किया होगा। उन दोनों का चिन्तन तथा तर्कशक्ति भी आप तथा हमारे अल्पज्ञ व्यक्तियों से कई गुना अधिक थी।

आपने अन्त में मनुस्मृति का एक श्लोक उद्धृत करके उसकी भी गलत व्याख्या की है। श्लोक केवल इतना ही कहता है कि जो व्यक्ति वेद तथा वेदानुकूल स्मृतिशास्त्र की अवहेलना करता है, उसे बहिष्कृत कर देना चाहिए, क्योंकि वह वेदनिन्दक हैं। भगवन! मैं तो वेदनिन्दक नहीं हूँ। मेरे ऊपर कृपा करें...

-बी-२२६, सरस्वती विहार, दिल्ली-३४

श्राद्ध, श्रद्धा है या आडम्बर

❑ आर. के. रस्तोगी...✍

जीवन में अजीब अचम्भा देखा,
जीते जी आदमी को भूखा देखा,
मरने के बाद उसको खाते देखा,
सदियों से चलती इस रीति को देखा,
श्राद्ध के नाम पर इस श्रद्धा को देखा,
देख रहे है आज उसे अनदेखा देखा,

वर्तमान की चिंता आज नहीं कर रहा,
भविष्य की चिंता आज किये जा रहा,
मानव किस मार्ग पर आज चल रहा,
चल कर भी उसे पता नहीं चल रहा,
सदियों से निभाता चला वह आ रहा,
इसी को श्राद्ध का नाम दिया जा रहा,

घर घर में चल रही ये कहानी है,
कोई जानी है कोई अनजानी है,
पर ये सब की जानी पहचानी है,
यह श्रद्धा है, या कोई नादानी है,
इस नादानी को अब बदलनी है,
श्राद्ध को श्रद्धा में ही बदलनी है,

अगर आज श्राद्ध श्रद्धा में बदल जायेगा,
तो मानव का स्वरूप ही बदल जायेगा,
दुःख ,सुख में परिवर्तित हो जायेगा,
आडम्बरो का विनाश ही हो जायेगा,
आओ आज श्राद्ध को श्रद्धा में बदले हम,
पुरानी लकीरों को नई लकीरों में बदले हम।

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।।

आध्यात्मिकता रहित भौतिक सुखों से युक्त जीवन अधूरा व हानिकारक

❑ मनमोहन कुमार...✍

मनुष्य मननशील प्राणी है। मनुष्य अन्नादि से बना भौतिक शरीर मात्र नहीं है अपितु इसमें एक अनादि, नित्य, अविनाशी, अमर, अल्पज्ञ, जन्म-मरण धर्म, शुभाशुभ कर्मों का कर्ता व भोक्ता जीवात्मा भी है जो इस शरीर का स्वामी है। आश्चर्य है कि अधिकांश शिक्षित व भौतिक विज्ञानी भी अपनी आत्मा के स्वरूप व इसके गुण-कर्म-स्वभावों से अपरिचित व अनभिज्ञ हैं। आत्मा विषयक सत्य ज्ञान वेद व इसके अनुगामी ऋषियों के उपनिषद् व दर्शन आदि ग्रन्थों में सुलभ है परन्तु हमारे भौतिकवादी विद्वान् उसे देखने का श्रम करना नहीं चाहते। इनकी मिथ्या धारणा है कि वेद एवं वैदिक ग्रन्थों में कोई बुद्धि संगत ज्ञान नहीं हो सकता। इनके पास अवकाश व जिज्ञासा ही नहीं होती कि यह एक बार इन ग्रन्थों की विषय वस्तु व सामग्री का अवलोकन तो कर लें। ऋषि दयानन्द से पूर्व इस प्रकार की सुविधा नहीं थी परन्तु अब तो यह सुलभ है। स्वामी दयानन्द जी ने ऐसे ही लोगों की सहायता के लिये विश्व का उच्च कोटि का धार्मिक, सामाजिक, राजधर्म की शिक्षा देने वाला ग्रन्थ ''सत्यार्थप्रकाश'' लिखा है। इसके अंग्रेजी, उर्दू व देश विदेश की अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुए हैं। सत्यार्थप्रकाश व इसके अनुवादों का जो विश्व स्तर पर पठित लोगों द्वारा जो सदुपयोग किया जाना चाहिये, अल्पज्ञता व अविद्यान्ध कार में डूबे लोग इन्हें पढ़ना उचित नहीं समझते। इस कारण वह सत्यार्थप्रकाश में वर्णित जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी आध्यात्मिक व सामाजिक विषयों के ज्ञान से वंचित हो गये हैं।

अध्यात्म का तात्पर्य ईश्वर व जीवात्मा सहित विभिन्न योनियों में जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों के विषय में जानना है। ईश्वर प्राप्ति के लिये साधना करना भी अध्यात्म में ही आता है। मुख्य ज्ञान तो हमें ईश्वर व आत्मा के विषय में ही प्राप्त करना होता है। इससे मनुष्य व अन्य प्राणियों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ईश्वर क्या व कैसा है, इसका सत्य, सारगर्भित व यथार्थ उत्तर मत-मतान्तरों के ग्रन्थ नहीं दे सकते। कुछ ऐसे भी मत हैं जो एक ही वस्तु को साकार व निराकार दोनों मानते हैं। ऐसा मानना बुद्धि का विकृत होना ही कहा जा सकता है। जिस वस्तु का आकार है उसे निराकार तो कदापि नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिकों ने परमाणु की संरचना पर विचार किया है और उसकी सिद्धि कर उसे विज्ञान के ग्रन्थों में सप्रमाण प्रस्तुत किया है। यह भी तथ्य है कि किसी वैज्ञानिक ने कभी हाईड्रोजन, ऑक्सीजन, नाईट्रोजन आदि तत्वों के परमाणुओं को नहीं देखा है फिर भी सारी दुनियाँ के वैज्ञानिक व विज्ञान के अध्येता परमाणु के अस्तित्व को मानते हैं। परमाणु वा इसके इलेक्ट्रान, प्रोटॉन व न्यूट्रॉन से भी सूक्ष्म जीवात्मा है और उससे भी सूक्ष्म सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान परमात्मा है। परमात्मा का अध्ययन, वैज्ञानिकों की तरह उसको बुद्धि से जानना व देखना, उसको यथावत् जानकर उस ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना करना ही अध्यात्म की उच्च स्थिति होती है। आत्मा को भी वेदों व इतर शास्त्रों के अध्ययन सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के द्वारा जाना जा सकता है। ईश्वर व जीवात्मा का सम्यक् ज्ञान हो जाने पर मनुष्य स्वतः ही ईश्वर की उपासना व समाज कल्याण के कार्यों में जुड़ जाता है। हमारे सभी ऋषि-मुनि ऐसा ही करते रहे हैं और आधुनिक युग में ऋषि दयानन्द और उनके प्रमुख अनुयायी भी वही कार्य कर रहे हैं।

ईश्वर की उपासना से क्या लाभ होता है? इसका उत्तर है कि ईश्वर की उपासना कर्तव्य की पूर्ति के लिये की जाती है। ईश्वर के हमारे ऊपर अगणनीय उपकार हैं। हम जब किसी से लाभान्वित होते हैं तो उसका धन्यवाद करते हैं। अतः ईश्वर के सहस्रों व अगणनीय उपकारों के

लिये उसका बारम्बार धन्यवाद करना तो हम सबका कर्तव्य बनता ही है। इसके लिये अपनी आत्मा, मन व सभी इन्द्रियों को भौतिक पदार्थों के चिन्तन से सर्वथा हटाकर ईश्वर के गुणों व उसके उपकारों का ध्यान कर उसके प्रति समर्पित होना होता है जिससे आत्मा को बल, शक्ति व सत्प्रेरणायें प्राप्त होती है। ईश्वर के सान्निध्य में जाने से आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि वह पहाड़ के समान दुःख आने पर भी घबराता नहीं है। ऋषि दयानन्द जी के मृत्यु के दृश्य को पढ़कर इसकी सिद्धि होती है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि आध्यात्म से रहित लोग मृत्यु के समय दुःखी व रोदन करते हुए देखे जाते हैं। ईश्वर को मानने वाला आध्यात्मवादी मनुष्य दुःख आने पर उसे अपने पूर्व अशुभ व पाप कर्मों का फल मानता है और उन्हें सहर्ष भोगता है, वह विचलित नही होता और ईश्वर का धन्यवाद करता है। जब कर्म का भोग पूरा हो जाता है तो वह दुःख दूर हो जाते हैं। आध्यात्मिक मनुष्य के लिये जन्म व मृत्यु दिन व रात्रि के समान हैं। जैसे दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन आता है, उसी प्रकार से जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म वा पुनर्जन्म होना नियम है। कोई किसी मत-मतान्तर को माने, आत्मा के पुनर्जन्म को माने या न माने, कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म तो सबका होता है व होता रहेगा। यदि पुनर्जम्न नहीं होता तो फिर जो जन्म लेने वाले लोगों में आत्मा आती है, वह कहां से आ रही है? कौन इसे बनाता है और इसमें किस पदार्थ का प्रयोग होता है, इन प्रश्नों के उत्तर किसी मत-मतान्तर के पास नहीं हैं। यह कह देने से कि जीवात्मा अपने आप बनती है या ईश्वर बनाता है, इससे काम नहीं चलता। इसका उत्तर है कि अभाव से भाव और भाव से अभाव अस्तित्व में नहीं आता। आत्मा और ईश्वर सदा से हैं और सदा रहेंगे। आत्मा बनती व नष्ट नहीं होती अपितु अविनाशी आत्मा का पुनर्जन्म व पुनर्मृत्यु होती है। आत्मा का जन्म व मृतक आत्मा का पुनर्जन्म सत्य सिद्धान्त है और यह संसार के प्रत्येक मनुष्य पर लागू होता है। कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

जो मनुष्य भौतिक सुखों के चक्र में फंसे व बंधे हुए हैं, उनके पास ईश्वर व जीवात्मा को जानने व ईश्वर की उपासना करने के लिये समय ही नहीं है। भौतिक सुखों का भोग करने से वह ईश्वर की उपासना व यज्ञादि कर्मों के फलों से पृथक व दूर हो जाते हैं जिससे उनका भविष्य व पुनर्जन्म प्रभावित वा बाधित होता है। जिन मनुष्यों ने इस जीवन में शुभकर्म व ईश्वरोपासना आदि कर्म व साधन किये हैं, उन्हीं का पुनर्जन्म मनुष्य व देवों के रूप में होना सम्भव है। भौतिकवादी मनुष्यों ने जो शुभाशुभ कर्म किये होते हैं, उसी के अनुसार उनका भावी जन्म निश्चित होता है। अतः जीवन को श्रेष्ठ व उत्तम कोटि का बनाने के लिये मनुष्यों को ईश्वर व जीवात्मा को जानकर ईश्वरोपासना व यज्ञादि कर्मों सहित परोपकार आदि करते रहना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि हमारा वर्तमान जीवन हमारे सम्पूर्ण भूतकाल का परिणाम है और हमारा भविष्य हमारे वर्तमान के कर्मों का परिणाम होगा।

मनुष्य जीवन हर क्षण व हर पल घट रहा है। समय बीतने के बाद बीते हुए क्षण वापिस लौटाये नहीं जा सकते। अनुभव से यह सिद्ध है कि ईश्वर का ज्ञान व साधना जो युवावस्था में कर सकते हैं वह वृद्धावस्था में नहीं हो पाती। वृद्धावस्था में अधिकांश मनुष्य रोग, पारिवारिक समस्याओं व अन्यान्य चिन्ताओं से ग्रस्त हो जाते हैं। फिर यदि ज्ञान भी हो जाये तो पछताना ही पड़ता है। अतः युवावस्था में ही सच्चे ज्ञानी के सम्पर्क में जा कर तर्क-वितर्क कर सत्य व असत्य को जानना चाहिये। इसकी सबसे अच्छी साधना सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन है। इसके अध्ययन व आर्यसमाज से सम्पर्क बढ़ाकर मनुष्य सत्य व प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। जीवन को वर्तमान व भविष्य के दुःखों से मुक्त करने के लिये हमें ध्यान करने योग्य ईश्वर के स्वरूप में स्वयं को स्थित कर उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन से मनुष्य को ईश्वरीय आनन्द और भौतिक सुख दोनो प्राप्त होते हैं। उनका भविष्य भी सुरक्षित होता है। कोरे भौतिक सुखों के भोग व ईश्वर उपासना आदि कार्यों को न करने से हमारा भविष्य बिगड़ता है। मनुष्य मननशील प्राणी है। उसे अपने जीवन की उन्नति से जुड़े सभी प्रश्नों पर विचार करना चाहिये। इसी में उसका लाभ है।

-देहरादून-२४८००१

सरकारों के साथ आवाम को भी आगे आना होगा प्लास्टिक मुक्त समाज के लिए

❑ महेश तिवारी...✍

हम बेहतर और सुगम जीवन की चाह रखते हैं। लेकिन हम भौतिक सुख-सुविधाओं में इतने तल्लीन होते जा रहें, कि खुद के विनाश की लीला तो लिख ही रहें। साथ में प्रकृति और पर्यावरण को भी व्यापक क्षति पहुँचा रहे। मान्यताएं है, कि प्रकृति ईश्वर की दी हुई मानव को अनमोल धरोहर है। तो उसे सहेजने की जिम्मेदारी और फर्ज भी हमारा हुआ। पर हम आज इतना सोच कहाँ रहें। स्वविकास की अंधी-दौड़ में हमनें उन सभी पहलुओं से मुँह मोड़ लिया है। जो एक नागरिक होने के नाते हमारे खुद के वजूद और वन्य-जीव के साथ प्रकृति के संरक्षण के लिए आवश्यक है। जो तत्कालीन दौर की काफी दु:खद स्थिति को बयां करती है। आज के दौर का दुर्भाग्य ही है, कि हम सिर्फ अधिकारों के संरक्षक बन कर रह गए है। ऐसे में अगर हम कर्तव्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों से दूर भाग रहें। फिर सामाजिक प्राणी कहलाने का औचित्य तो कहीं न कहीं हम खो रहें।

इसके अलावा जिस संविधान की दुहाई देते हुए आज हम और हमारा समाज चिल्ल-पौं करता है अपने अधिकारों की। उसी में तो जिक्र ग्यारह कर्तव्यों का भी है। उसे हम दरकिनार क्यों कर देते हैं। अधिकार सम्पन्न होने से हम बेहतर जीवन जी तो सकते हैं, लेकिन अगर हम अपने कर्तव्यों को निष्ठापूर्वक कंठस्थ करके उसका अनुपालन करें। फिर जीवन ओर सुगम और आसान बन सकता है। यहां बात हम प्लास्टिक से होने वाले नुकसान और उससे कैसे मानव-जीवन और प्रकृति को बचाया जाएं। उस विषय पर कर रहें। तो यहां पहले जिक्र संविधान में वर्णित उस कर्तव्य को कर लेते हैं, जिसके अनुपालन का ध्यान आज हमारा समाज और देश के लोग नहीं दे रहें। जो है, कि हम प्रकृति, वन्य-जीव आदि के संरक्षण के सहभागी बनेंगे। यहां एक बात का जिक्र यह भी होना चाहिए, कि हम और हमारा समाज आज अन्य लोगों पर आश्रित काफी ज्यादा हो गया है। फिर वह चाहें सरकार पर हो, या अन्य संस्थाओं पर। आज हम बात करते हैं, कि हमारी रहनुमाई व्यवस्था यह नहीं करती। हमारे सियासी नुमाइंदे वह नहीं करते। तो इन सब से इतर कभी हम देश के एक नागरिक होने के नाते यह क्यों नहीं सोचते, कि हम क्यों कुछ नहीं करते। अब प्लास्टिक पर रोक भी लोकतंत्र में चुने नुमाइंदे ही लगाएं। यह कैसी रवायत। जब हम अपनी सोच और आदत में बदलाव नहीं लाएंगे। फिर चीजें निष्पादित कैसे होगी, यह हम और हमारा समाज क्यों नहीं समझता।

१) प्लास्टिक प्रदूषण और मानवीय चेतना:-

आज के दौर में स्वविकसित होने की सरपट दौड़ में हमारी चेतना देश, समाज और प्रकृति आदि के लिए अवचेतन हो गई है। ऐसा कहना कतई अतिश्योक्ति समझ नहीं आता। आज के दौर में प्लास्टिक प्रदूषण एक गंभीर वैश्विक समस्या बनती जा रही। तो उससे हमारा देश भी अछूता कैसे रह सकता है। हम उस प्रथा के संवाहक भी रहें हैं वर्षों पूर्व। जब हमारे बुजुर्ग घर की चौखट से किसी काम के लिए निकलते ही कपड़े, जूट आदि का थैला लेकर निकलते थे। पर आज के भाग-दौड़ की जिंदगी में हम अपनी परम्पराओं और रीति-रिवाजों को छिन्न-भिन्न कर रहें हैं। फिर साथ में थैला लेकर चलना तो सामान्य बात थी, उसका कैसे हम निवर्हन कर सकते हैं। बात अगर करें विश्व पटल की तो एक वर्ष के भीतर ही अरबों प्लास्टिक के बैग प्रकृति की गोद में फेंक दिए जाते हैं। जो सिर्फ प्रकृति की गोद को बंजर ही नहीं करती। अनगिनत समस्याओं की उपज के कारक भी बनते है। तो ऐसे में ये प्लास्टिक बैग कहीं नालियों के प्रवाह को रोकते हैं, और आगे बढ़ते हुए वे नदियों और महासागरों तक पहुंचते हैं। तो कहीं ये पशुओं के जीवन चक्र में जहर घोलने का काम करते हैं। मतलब एक मानवीय कृत्य के कारण काफी बड़ा नुकसान प्रकृति के साथ बेजुबान

जानवरों और खुद मानव को भी उठाना पड़ता है। फिर भी वह इसके विकराल परिणाम को देखने के बाद भी अपनी अवचेतन अवस्था को त्यागने को तैयार नहीं दिख रहा। तो यह काफी सोचनीय विषय हो जाता है। चूंकि प्लास्टिक स्वाभाविक रूप से विघटित नहीं होता है इसलिए यह प्रतिकूल तरीके से नदियों, महासागरों आदि के जीवन और पर्यावरण को प्रभावित करता ही है। साथ में प्लास्टिक के कारण उत्पन्न प्रदूषण लाखों पशु-पक्षियों के मारे जाने का कारण बनता है। जो पर्यावरण संतुलन के मामले में एक अत्यंत चिंताजनक पहलू को बयां करता है।

ऐसे में अगर हम प्लास्टिक की प्रकृति देखें तो यह मृदा प्रदूषण का अहम कारक है। आज हम कहीं भी नजर उठाकर देखेगें, तो सामान्यत: प्लास्टिक जमीन पर पड़ी दिख जाएंगी। जो हमारी धरती माँ की एक हिसाब से गोद सूनी करने का काम करती है, क्योंकि जहां कहीं भी प्लास्टिक पाई जाती है। वहां पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति क्षीण हो जाती है, साथ ही साथ जमीन के नीचे दबे दाने वाले बीज अंकुरित नहीं हो पाते। जिस कारण उपजाऊ भूमि बंजर में तब्दील हो जाती है। इसके अलावा प्लास्टिक नालियों में गंदे पानी के बहाव को रोकता है और पॉलीथीन का ढेर वातावरण को प्रदूषित करता है। चूंकि हम बचे खाद्य पदार्थों को पॉलीथीन में लपेट कर फेंकते हैं तो पशु उन्हें ऐसे ही खा लेते हैं जिससे जानवरों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यहां तक इससे उनकी मौत भी हो जाती है। फिर कहीं न कहीं हम पशुओं के हत्यारे जाने-अनजाने में बन रहे। तो हमें समझ नहीं आता, कि हम गौ-संरक्षण आदि का ढोंग क्यों रचते हैं। अगर हम इतने ही कर्तव्यनिष्ठ और अपने फर्ज के प्रति वफादार हैं, तो प्लास्टिक को न क्यों न कहें, और कपड़े आदि के थैले को आज के दौर में हाँ कहें।

२) जानतें हैं, क्या है प्लास्टिक प्रदूषण:-

यूँ देखा जाएं। तो प्लास्टिक सामान्यत: सभी तरीके के प्रदूषण का वाहक बनता है। फिर भी यह मृदा प्रदूषण का संवाहक अधिकांशत: बनता है। जब धरती के किसी हिस्से या नदी आदि में प्लास्टिक उत्पादों के ढेर इकट्ठा हो जाते हैं, उसे प्लास्टिक प्रदूषण की संज्ञा दी जाती है। यह मनुष्य, पक्षी, जानवरों के जीवन पर व्यापक पैमाने पर आघात अमूमन डालती ही है। साथ में प्रकृति को बांझ बनाने का कार्य भी करती है। अब अगर प्लास्टिक की बात करें। इसका निर्माण कैसे होता है। तो यह अमूमन पेट्रोलियम पदार्थों से उत्सर्जित सिंथेटिक रेजिन से बना है। रेजिन में प्लास्टिक मोनोमर्स अमोनिया और बेंजीन का संयोजन करके बनाया जाता है। प्लास्टिक में क्लोरीन, फ्लोरीन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और सल्फर के अणु शामिल हैं। ऐसे में अगर हम बात प्लास्टिक से होने वाले नुकसान की करें, तो इसके विनाशकारी प्रभाव दृष्टिगत हो रहें हैं। आज दुनिया में हर देश प्लास्टिक प्रदूषण की विनाशकारी समस्याओं से जूझ रहा है।

इसके अलावा शहरी वातावरण को तो प्लास्टिक से होने वाले प्रदूषण ने पूरी तरह से अपने आगोश में समेट लिया है। शहरी जीवन इसलिए ग्रामीण अंचलों से ज्यादा प्लास्टिक प्रदूषण से प्रभावित है, क्योंकि सुदूर गाँवों में आज भी लोग कुछ हद तक कपड़े आदि के थैले का उपयोग कर लेते हैं। पर शहरी जीवन में बाहर से कुछ भी लाना है, तो प्लास्टिक की थैली ही जीवन का अपरिहार्य अंग बन गया है। ऐसे में लगता है, कि ज्यादा शिक्षित हो जाना भी परम्पराओं और अपनी पुरातन सभ्य आदतों के लिए खतरनाक स्थिति पैदा करती है। शहरों में गाय और अन्य जानवरों के साथ बड़ी संख्या में पक्षी प्लास्टिक की थैलियों का उपभोग करने की वजह से मारे जा रहे हैं।

३) प्लास्टिक प्रदूषण धरा के अस्तित्व को कैसे दे रहा चुनौती:-

एक तरफ हम बेहतर और स्वस्थ जीवन की होड़ में लगे हुए हैं। तो दूसरी तरफ हमारी जरा सी भौतिकवादी सुख-सुविधा की सोच के कारण अपने समाज और प्रकृति के अस्तित्व को चुनौती देने का कार्य कर रहें हैं। आज ग्रामीण अंचलों में तो कम, पर शहरी जीवन में पॉलीथिन का महत्व सर्वव्यापी हो चला है। छोटी सी खाने की वस्तु से लेकर बड़ी पैकिंग की वस्तुओं तक का कारोबार प्लास्टिक की थैलियों पर ही निर्भर हो गया है। जब

समय-समय पर होने वाले अनुसंधान यह अनुशंसा करते हैं, कि प्लास्टिक की बोतलों और कंटेनरों का उपयोग बेहद खतरनाक है। एक प्लास्टिक के गिलास में गर्म पानी या चाय पीने से कैंसर तक हो सकता है। फिर समझ नहीं आता क्यों हम प्लास्टिक से मोह छुड़ा नहीं पा रहे। वैसे भी हम उस सभ्यता और संस्कृति से जुड़े रहें हैं। जहां पर केले आदि के पत्ते पर सामूहिक भोज कराया जाता रहा है। साथ में कुल्हड़ आदि में चाय आदि पी जाती रही है। पर हमने आधुनिकता की चमक के आगे सब बातों को तो बिसार दिया है। जो बेहद चिंताजनक स्थिति है। अनुसंधान कहता है, कि जब सूर्य के तापमान से प्लास्टिक गर्म होता है, तब उससे हानिकारक रासायनिक डाई-ऑक्सीजन का रिसाव होता है। जो किसी भी जीव-जंतु और प्राणी के लिए बेहद हानिकारक है। फिर हम इन बुराइयों को नजर- अंदाज कैसे कर देते हैं। जीवन के प्रति संजीदा और सचेत होने के बाद भी। यह पल्ले नहीं पड़ता।

हम प्लास्टिक के अन्य नुकसान पर चर्चा करें, तो इसके अलग-अलग तरीके के नुकसान हैं। जैसे पाइपों, खिड़कियों और दरवाजों के निर्माण में इस्तेमाल पीवीसी विनाइल क्लोराइड के पोली-मराइजेशन द्वारा बनाई गई है। इसकी बनावट में प्रयोग होने वाला रसायन मस्तिष्क और यकृत का कैंसर पैदा कर सकता है। इसके अलावा कई तरह के प्लास्टिक के निर्माण में फार्मलाडेहाइड का उपयोग किया जाता है। जो रसायन त्वचा पर चकत्ते पैदा कर सकता है। इसके इतर इसके साथ कई दिनों तक संपर्क में रहने से अस्थमा और श्वसन रोग भी हो जाते हैं। इसके अलावा जब प्लास्टिक की थैली आदि घर आदि से बाहर निकलकर वातावरण में पहुँचती है, तो वह जीव-जंतु और मृदा के साथ प्रकृति के लिए महाभिशाप बनती है। ऐसे में अगर प्लास्टिक को जला दिया जाएं, तो वह प्रकृति पर जीवन के लिए ओर भी हानिकारक है। प्लास्टिक को जलाने से अमूमन कार्बन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड गैसों का उत्सर्जन होता है। जो मानवीय जीवन के लिए काफी हानिकारक है।

इसके अलावा पॉलीस्टाइन प्लास्टिक के जलने से क्लोरो-फ्लोरो कार्बन का उत्पादन होता है जो वायुमंडल के ओजोन परत को क्षति पहुँचाता है। कुल-मिलाकर प्लास्टिक हर मायने में प्रकृति और प्राणियों के लिए शत्रु से कम नहीं।

४) बड़े शहरों का प्लास्टिक कचरें में योगदान और हमारी रहनुमाई व्यवस्थाः-

आज हमारे महानगरों और शहरों की क्या स्थिति हो चली है। उससे सभी वाकिफ हैं। दिल्ली जैसे शहर स्वस्थ की दृष्टि से रहने योग्य नहीं बचें हैं। अन्य शहर भी लगभग कुछ यूँही समस्याओं से दो-चार हो रहें। महानगरों में हरियाली और बेहतर जीवनशैली बिताने के लिए कोई माहौल न बचकर सिर्फ और सिर्फ कूड़े के पहाड़ निर्मित हुए दिखते हैं। इन कूड़े के पहाड़ों का समुचित निपटान करने की व्यवस्था आज हमारे लोकशाही व्यवस्था के पास भी दृष्टिगत नहीं हो रही। शहरों में जीवन जीने की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की वस्तुएं जैसे पानी आदि की व्यापक पैमाने पर कमी दिखने लगी है। तो इसके लिए जिम्मेदार भी कहीं न कहीं हम और हमारा शहरी समाज है। जब प्लास्टिक कचरा जमा होगा, तो वह वर्षा जल संचय होने नहीं देगा। फिर स्वाभाविक बात है हमारे शहरी समाज को पानी आदि की किल्लत झेलनी पड़ेगी। इसके अलावा जब रिपोर्ट्स हमें आगाह कर रहीं पेड़ जो वर्षा कराने में काफी महती भूमिका अदा करते हैं, उनकी हिस्सेदारी हमारे देश में लगभग २४ पेड़ प्रति व्यक्ति रह गया है।

फिर यह अनुपात शहरों और महानगरीय जीवन मे कितना होगा, इसको पता करना कोई मुश्किल भरा काम समझ नहीं आता। तो इसके बाद भी अगर शहरों में पॉलीथिन का बेइंतहा उपयोग हो रहा। फिर उसके दुष्प्रभाव हम देख रहे, साथ में इससे भी भयानक परिणाम के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। प्लास्टिक के थैलों के निर्माण में कैडमियम और जस्ता जैसे बेहद विषैले पदार्थों का उपयोग होता है, जो प्राणियों के लिए खतरनाक तो है ही, साथ में प्लास्टिक कचरा पर्यावरणीय चक्र को भी रोक देता है। ऐसे में सहूलियत का सौदा जिस पॉलीथिन को हमारा समाज समझ रहा। वह पॉलीथिन हमारी कुदरत और हमारे लिए यमराज से कमतर कतई नहीं। देश का दुर्भाग्य देखिए जिस

पॉलीथिन को बनाने, रखने और इस्तेमाल करने पर हमारी दिल्ली की तख्त ने २००२ से ही प्रतिबंध लगा रखा है। इसके अलावा अब धीरे-धीरे राज्य सरकारें भी प्रतिबंध लगा रही। उन पर अमल न सरकारें करा पा रहीं है, न अवाम करने को तैयार दिख रही है। इतना ही नहीं जिस दिल वाली दिल्ली को कचरे का पहाड़ आज के दौर में घोषित किया जा सकता है।

वहाँ पर सितंबर २०१२ से ही पॉलीथिन के उत्पादन, संग्रह और इस्तेमाल को संज्ञेय अपराध की श्रेणी में रखा गया है, लेकिन धड़ल्ले से उपयोग हो रहा पॉलीथिन का। न नियम का डर है, न लोग अपनी आदतों में सुधार लाना चाहते हैं। एक हालिया अध्ययन अगर यह कहता है, कि ६० बड़े शहरों से प्रतिदिन लगभग ४,०५९ टन प्लास्टिक कचरा निकलता है। फिर यह भयावह स्थिति निर्मित कर रहा। वहीं अगर इस कचरे का अनुमान पूरे देश में लगाया जाएं, तो इसकी मात्रा २५,९४० टन प्रतिदिन है। जिसमें से अगर रहनुमाई तंत्र यह कहती है, कि वह लगभग ६० फीसद प्लास्टिक कचरे को एकत्रित और पुनर्चक्रण कर लेती है। तो उसकी सराहना की जानी चाहिए। मगर शेष ४० फीसद तो हमारे प्रकृति और पर्यावरण को हानि पहुँचा रहा। उससे निपटने का उपाय हमें जल्द ढूढ़ना होगा।

५) पुनश्चः-

ऐसे में अगर एक अध्ययन रिपोर्ट यह कहती है, कि देश के भीतर उत्पन्न प्लास्टिक कचरें का शत-प्रतिशत निस्तारण, पुनर्चक्रण और शोधन नहीं हो पाया। तो भविष्य में देश ''विषैला टाइम बम'' बन जाएगा। तो यह कोई गलत पूर्वानुमान नहीं लग रहा, क्योंकि बड़े शहर तेजी से उस तरफ कदम बढ़ा रहे। तो ऐसे में अब देश की अवाम को ही आगे आना होगा। अपने बेहतर कल और प्रकृति की बेहतरी के लिए। सरकारें तो अपने स्तर पर कार्य कर ही रहीं। अब अगर विषैले टाइम बम से देश और समाज को बचाना है, तो प्लास्टिक कचरे के खिलाफ जनांदोलन खड़ा करना होगा। तभी कुछ सकारात्मक परिणाम दिख सकते हैं, क्योंकि प्लास्टिक कचरा प्रबंधन नियम २०१६ के तहत तो ५० माइक्रोन से कम आकार के प्लास्टिक बैग और अन्य उत्पादों पर प्रतिबंध लागू हैं। साथ में अब तक लगभग २१ राज्य और संघ शासित क्षेत्र भी इस नियम को अपना चुके हैं। तो सरकारें तो नियम बना सकती हैं। कड़ाई से उसको लागू कर सकती हैं, लेकिन किसी की आदत को तो नहीं बदल सकती। तो आज जो समाज के लोग अपने-आप को सच्चें अर्थों में गऊ भक्त आदि साबित कर रहें। वे क्यों नहीं पॉलीथिन की बंदी के लिए जनांदोलन छेड़ते, क्योंकि आँकड़े कहते हैं कि लगभग २० से अधिक गाएं प्रतिदिन पॉलीथिन खाने की वजह से मर जाती हैं।

इसके अलावा जलीय जीव-जंतु और मानवीय समाज भी पॉलीथिन के दुष्प्रभाव से प्रभावित होता है। तो अब उसे पॉलीथिन को न कहना होगा। इसके अलावा यहां जिक्र सरकार के उस दोहरे रवैये का भी हो। जिसके अनुसार वह लोगों से पॉलीथिन के न उपयोग करने की बात तो कहती है, और नियम बनाती है। पर आज भी तो लगभग सभी कम्पनियां अपने छोटे से छोटे उत्पाद को पॉलीथिन में पैक कर ही बेचती हैं। साथ में पॉलीथिन बनाने वाली कम्पनियों पर भी कोई चाबुक नहीं चलता। तो ऐसे में एकांकी होकर तो देश को विषैले टाइम बम से मुक्ति मिल नहीं सकती। तो बात यहीं आकर रुकती है, सरकार और समाज दोनों अपनी जिम्मेदरियों को समझें। पॉलीथिन का उपयोग न के बराबर करने का प्रण देश, समाज और प्रकृति की बेहतरी के लिए समाज ले। इसके अलावा सड़क निर्माण, सीमेंट भट्टियों और भवन निर्माण में प्लास्टिक कचरे के इस्तेमाल की नयी तकनीकों को शत-फीसद बढ़ावा दिया जाएं।

इन सब के इतर हमारा पुरातन समाज जिस जूट, कपड़े आदि के थैले का इस्तेमाल करता था, साथ में पत्तल और कुल्हड़ आदि को बढ़ावा दिया जाएं। तो इससे दो फायदे होंगे। एक गांव और सुदूर क्षेत्र के लोगों को क्षेत्रीय स्तर पर काम उपलब्ध होगा, साथ में पर्यावरण और मानवीय जीवन के साथ जीव-जंतु भी पॉलीथिन के प्रभाव में आकर अकाल काल का शिकार होने से बच जाएंगे।

-गोंडा (उत्तरप्रदेश)

आधुनिक शिक्षा की नींव तथा उसका प्रभाव

❑ ब्र. राहुल आर्य...

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही सभी विद्याओं तथा शिक्षाओं का केन्द्र रहा है। इस भारतवर्ष में शिक्षार्थ विदेशी छात्र-छात्राओं का भी समावेश सदा होता रहा है। नालन्दा विश्वविद्यालय तथा तक्षशिला आदि विश्वविद्यालयों की अपने समय में इस विस्तृत भूभाग पर एक अमिट छाप रही है और यदि हम मध्यकाल से भी पूर्व वैदिककाल में पदार्पण करते है तो भी इस सम्पूर्ण आर्यावर्त अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी पर शिक्षा-दीक्षा का अभाव परिलक्षित नहीं होता। हमारी शिक्षा और विद्या जो अभी तक सांस ले रही है, उसका सम्पूर्ण श्रेय भारत की अखण्ड संस्कृति को जाता है। पर हाय रे! इस भारतवर्ष का दुर्भाग्य और हमारी प्राचीन संस्कृति का अहोभाग्य कि आज वह अपने ही घर में प्रतिष्ठा पाने को तरस रही है। आज भारत में जहां देखे सर्वत्र हाहाकार, भ्रष्टाचार, भेदभाव तथा जाति के नाम पर दंगे यह सब आधुनिक शिक्षा का जीता जागता उदाहरण है। लार्ड मैकाले द्वारा चलाई गयी यह शिक्षा प्रत्येक भारतीय जन के ह्रदय में अपना घर कर चुकी है। जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पडा है। मैकाले से पहले वैदिक साहित्य को भ्रष्ट करने के लिए 15 अगस्त 1811 को कर्नल बोडन नामक एक व्यक्ति ने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को अपने स्वीकार पत्र के अनुसार पुष्कल धन राशि दी और उस धन के लिए शर्त यह थी कि उससे अंग्रेजो को आर्य साहित्य का ज्ञान कराया जाए। जिससे आर्यो के साहित्य में बदलाव करके हिन्दुओं को ईसाई बनाया जा सके। सन् १८११ से ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में यह काम चलता रहा। संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी तैयार की गयी और बहुत से छात्रों को भारतीय साहित्य की शिक्षा दी जाने लगीं। इस शिक्षा की भारत में नींव रखने का मुख्य प्रयोजन भारत की बर्बादी तथा यहां के निवासियों को ईसाई बनाना था। आज भारत की दशा को देखकर यह सपना साकार सा हुआ लगता है। यह बात सिद्ध भी है कि यदि किसी देश को समूल नष्ट करना हो तो सबसे पहला प्रहार उसके साहित्य पर करना चाहिए और इसी बात का अनुकरण लार्ड मैकाले ने भी किया उसने भारत में आकर सबसे पहला प्रहार यहां की संस्कृति तथा प्राचीनकाल से आ रहे साहित्य पर किया। मैकाले एक पादरी परिवार में उत्पन्न हुआ था और वह १८३४ में 'लीगल एडवाइजर टु दी कौन्सिल ऑफ इन्डिया' बनकर भारत आया, और लार्ड मैकाले को भारत में एजुकेशन बोर्ड का प्रधान बनाया गया। वह चार वर्ष भारत में रहा और उसने भिन्न-भिन्न प्रान्तो में घूमकर अनुभव किया कि जिस प्रकार ईस्ट-इंडिया-कम्पनी भारत को चला रही है, उससे हम हिन्दुओं को ईसाई नहीं बना सकते। इसलिए उसने पहला कार्य यह किया की भारत में जहाँ-जहाँ संस्कृत पढाई जाती थी, उसने वहाँ अनुदान देना बन्द करवाया और कलकत्ता में स्थानीय कॉलेजो को मिलने वाला अनुदान भी समाप्त कर दिया गया। इसप्रकार लार्ड मैकाले द्वारा आधुनिक शिक्षा का भारत में पदार्पण कराया गया और छात्रों को ईसाई बनने की शिक्षा दी जाने लगी। जिसका प्रभाव आज भी हम भारत के दक्षिण प्रान्तों में देख सकते है। जब मैकाले १८३९ में इंग्लैण्ड पहुँचा तो उसने कहा कि संस्कृत मैने इसलिए बन्द की है कि यदि भारत में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन इसी प्रकार जारी रहा तो हम अंग्रेजी सभ्यता को यहाँ नहीं फैला सकेंगे, और लार्ड मैकाले का यह मिशन भी हमारे देश के स्वार्थी लोगों द्वारा सफल करा दिया गया। इस सफलता के कारण आज

भारत की दशा यहाँ तक बिगड गयीं है कि ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र भी संस्कृत तो दूर हिन्दी भाषा में भी महिनों तथा ऋतुओं के नाम नहीं जानते। छोटे-छोटे बच्चें जो अभी पूर्ण रूप से किशोर अवस्था को ही नहीं प्राप्त हुए है। वे भी इस कलुषित आधुनिक शिक्षा की छाव में व्यस्न तथा विद्युत यन्त्रों से अपनी बर्बादी करने पर तुले है। आज कोई भी पाश्चात्य विद्या को पढने वाला विद्यार्थी यह नहीं जानता कि भारतवर्ष पहले आर्यो से परिपूर्ण था, और आर्य इसी देश के मूल निवासी है क्योकि आज छोटी से छोटी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालयों तक में यही पढाया जाता है कि इस देश के मूल निवासी कोल, द्रविड, भील तथा संथाल आदि है और यह भी सिखाते है कि आर्य लोग इरान से आये थे, और उन्होने इन भील आदि पर आक्रमण कर इस भारतवर्ष में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस मान्यता के आधार पर कहा जाता है कि यदि दो सौ वर्ष पहले आने वाले अंग्रेज और चार सौ वर्ष पहले आने वाले मुगल विदेशी है तो तीन हजार वर्ष पूर्व आने वाले आर्य विदेशी क्यों नहीं हो सकते? आदि इसप्रकार की भ्रान्त शिक्षा इस आधुनिक शिक्षा द्वारा सर्वत्र फैला दी गयी और इस शिक्षा का इतना प्रभाव पडा कि ४ सितम्बर १९७७ को संसद में राष्ट्रपति द्वारा मनोनित सदस्य सर फ्रैंक एन्थोनी ने माँग की थी कि संविधान के आठवें परिशिष्ट में परिगणित भारतीय भाषाओं की सूची में से संस्कृत को निकाल देना चाहिए क्योंकि यह विदेशों से आये आर्यो की भाषा है। इसी प्रकार २३ फरवरी १९७२ को द्रमुक के प्रतिनिधि लक्ष्मणन् ने राज्य सभा में मांग की थी की भारतीय उपग्रह का नाम 'आर्य भट्ट' नही रखा जाना चाहिए था। क्योकि यह विदेशी नाम है। ऋषि क्रान्त द्रष्टा होता है। महर्षि दयानन्द ने इन सब भ्रान्त बातो का विरोध करते हुए आवाज उठाई थी कि किसी संस्कृत ग्रन्थ में व इतिहास में नहीं लिखा है कि आर्य लोग इरान से आये और यहाँ के जंगलियों भील आदि से लडकर और उन्हे बाहर निकालकर अपना अधिपत्य किया। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है। इसी बात की पुष्टि करते हुए इतिहास विद् म्यूर भी कहते है कि किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में चाहे वह कितना भी पुराना हो आर्यो के विदेश मूलक होने का उल्लेख नहीं मिलता। आश्चर्य इस बात का है कि जहाँ यह पढाया जाता है कि आर्य लोग इरान से आकर भारत में बस गये, वहाँ इरान में यह पढाया जाता है कि आर्य लोग भारत से जाकर इरान में बस गये। तो फिर क्यो आज हमारे देश में ये झूठी भ्रान्तियाँ फैलायी जा रही है क्यो भारत को उसकी संस्कृति से विमुख किया जा रहा है। इन सब समस्याओं को समूल नष्ट करने के लिए आज विशेष अनुसंधान की जरूरत है। मैकाले पूर्ण रूप से भारत में ईसाईयत फैलाना चाहता था, यह बात उसके द्वारा १२ अक्टुबर १८३६ में अपने पिता को लिखे एक पत्र से सिद्ध हो जाती है वह लिखता है कि- 'मेरे प्यारे पिता! हमारे अंग्रेजी स्कूल बडी शीघ्रता से उन्नति कर रहे है। इस अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दुओं पर बडा लाभकारी प्रभाव हुआ है कोई भी हिन्दु जिसने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है अपने धर्म के प्रति श्रद्धावान् नहीं रहेगा'। यह बात सत्य सिद्ध है कोई भी व्यक्ति जो प्रारम्भ से ही अंग्रेजी पढा हो वह अपनी संस्कृति धर्म तथा परम्परा को बिल्कुल भी महत्व नहीं दे पाता है। अंग्रेजी को सिखा हुआ व्यक्ति अन्य भाषा भाषी को हेय दृष्टि से देखता है। लार्ड मैकाले की भाँति ही मैक्समूलर साहब ने भी हिन्दुओं को अपनी संस्कृति के विरूद्ध भटकाने का एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। लार्ड मैकाले के सुझाव से प्रो. एफ. मैक्समूलर ने वेदों के भाष्य का यह कार्य १८५५ में प्रारम्भ किया आज जिस मैक्समूलर के भाष्य को हम निष्पक्ष की संज्ञा देते है वही मैक्समूलर १८६६ में अपनी पत्नी को एक पत्र के माध्यम से कहता है कि- 'मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं यह कार्य (वेदों का भाष्य) सम्पूर्ण करूंगा। मेरा यह संस्करण वेदों का आद्यन्त अनुवाद बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास

पर प्रभाव डालेगा'। उपरोक्त वचनों को पढकर हमे इतना विश्वास तो हो ही गया होगा कि मैक्समूलर ने किस हद तक वेदों का भाष्य सही ढंग से किया होगा। इन्हीं गलत वेद भाष्यों को पढकर आज भारत का नागरिक चोटी, जनेऊ आदि धारण करने पर अपने आप को हेय दृष्टि से देखता है। भारत को आजादी मिले ७२ वर्ष पूर्ण हो गये है। लेकिन आज भी बहुत से नियम कानून जो अंग्रेजो द्वारा चलाए गये थे ज्यों के त्यों भारत में लागू हो रहे है। बहुत से स्थान आज भी अंग्रेजों के नाम पर स्थित है। इन सब बातों के तथा कथित विवादों के चलते हम अपने आपको भला स्वतन्त्र कैसे कह दे। आज उस मनुस्मृति जो अपने आप में एक पूर्ण संविधान है उसकी पूर्ण रूप से गलत व्याख्या करके उसको पूर्ण रूप से मिटाने का विचार चल रहा है। सरे आप उस पर पदाघात किये जा रहे है। इस प्रकार के बखेडों को खडा करने वाले कोई ओर नहीं अपितु वे ही आधुनिक शिक्षा को ग्रहण करने वाले छात्र है, जो स्कूलों में जाकर पढाई कम और राजनीति पर अधिाक ध्यान देते है तथा स्कूलों से आकर आवारागर्दी करते है। ऐसे कार्य संस्कृत पढने वाले छात्र व प्राचीन साहित्य के ज्ञाता छात्र कदापि नहीं कर सकते। भारतीय संस्कृति के अनुसार विद्यार्थी के पांच लक्षण माने जाते है। जो इन लक्षणों से परिपूर्ण छात्र होता है वह विद्या के मामले में कहीं भी किसी से भी मात नहीं खा सकता। वे लक्षण इस प्रकार है-

काक चेष्टा बको ध्यानं श्वाननिन्द्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्च लक्षणम्॥

अर्थात् कौवे जैसी चेष्टा, बगुले जैसा ध्यान, कुक्कुर जैसी निन्द्रा, थोडा खाने वाला और गृह त्याग देने वाला।

किन्तु यदि हम इस आधुनिक शिक्षा को ग्रहण करने वाले छात्र को देखते है तो इनमें से कोई भी लक्षण इन छात्रों में नहीं घटता। यदि हम विचार करें और देखें तो आज इस आधुनिक शिक्षा को ग्रहण करने वाले विद्यार्थी के लिए ये पांच लक्षण उपयुक्त दिखाई देते है-

फिल्म चेष्टा इश्कध्यानं घोर निन्द्रा तथैव च।
मूर्गाहारी बोतलधारी विद्यार्थी पञ्च लक्षणम्॥

इस आधुनिक शिक्षा के युग में कुछ विरले ही छात्र है जो इन लक्षणों से अछूते रह गए है।

अत: हमें ऐसी आधुनिक शिक्षा से जो हमें ईसाई बनाने के लिए लागु हुई, मुक्त होने के लिए पुन: अपनी पुरानी वैदिक परम्परा को अपनाना होगा। वही मोक्ष दायिनी है और अपने अखण्ड साहित्य को पुनर्जीवन देना होगा।

मैथिली शरण गुप्त जी इस भारतीय अखण्ड साहित्य की प्राचीनता तथा विशेषता बतलाते हुए लिखते है कि-

फैला यहीं से ज्ञान का आलोक सब संसार में
जागी यही थी जग रहीं जो ज्याति अब संसार में।
इंजीन और कुरान आदि थे न तब संसार में,
हमें मिला था दिव्य वैदिक बोध जब संसार में॥
जिनकी महत्ता का न कोई पा सका भेद ही,
संसार में प्राचीन सबसे है हमारे वेद ही।
प्रभु ने दिया यह ज्ञान हमकों सृष्टि के आरम्भ में,
है मूल चित्र पवित्रता का सभ्यता के स्तम्भ है॥

- शास्त्री द्वितीय वर्ष,
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजा: संरक्षति। दण्ड: सम्पदा योजयति, दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभाव:।
दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम्। दण्डपारुष्यात् सर्वजनद्वेष्यो भवति। - कौटिल्य अर्थशास्त्र

जो शासक दण्ड का प्रयोग करता है, वही प्रजा की रक्षा कर सकता है। दण्ड से राज्य के ऐश्वर्य की रक्षा होती है। यदि समुचित दण्ड का प्रयोग न किया जाए तो अच्छे परामर्शदाता मन्त्री नहीं मिलते। शासन-व्यवस्था की रक्षा के लिए दण्डनीति आवश्यक है। किन्तु यह ध्यान रहे कि दण्ड का प्रयोग कठोरता से किया तो सब लोग द्वेष करने लगते हैं।

योगदर्शनशिक्षणम्

❑ शिवदेव आर्यः...

अवतरणिका-

तदवस्थे चेतसि विषयाभावाद् बुद्धिबोधात्मा पुरुषः किंस्वभाव? इति -

पदार्थव्याख्या-

तद्+अवस्थे=उस असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में **चेतसि**=चित्त में **विषयाभावाद् (विषयाणाम् अभावः तस्मात्)**=विषयों का अभाव होने से **बुद्धिबोधात्मा**=बुद्धि को प्रेरित करने वाला **पुरुषः**=पुरुष अर्थात् आत्मा **किम्**=क्या **स्वभावः**=स्वभाव होता है? **इति**=ऐसा...।

व्याख्या-

उस समय चित्तवृत्तियों के रुक जाने पर अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था चित्त में विषयों का अभाव हो जाने के कारण से बुद्धि को प्रेरित करने वाला पुरुष अर्थात् आत्मा किस स्वभाव वाला होता है, ऐसा इस सूत्र में बताया जायेगा -

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्

-योगदर्शन.-१/३

समास-

स्वरूपे+अवस्थानम्=स्वरूपेऽवस्थानम् (सप्तमीतत्पुरुष)।

पदार्थव्याख्या-

तदा=तब असम्प्रज्ञात समाधि में **द्रष्टुः**=जीवात्मा परमात्मा के **स्वरूपे**=स्वरूप में **अवस्थानम्**=अवस्थित होता है।

सूत्रार्थ-

उस समय चित्तवृत्तियों के रुक जाने पर अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप में ही ठहरता है।

व्यासभाष्य- स्वरूपप्रतिष्ठा तदानीं चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये।

व्यासभाष्य पदार्थ व्याख्या-

स्वरूपप्रतिष्ठा=परमात्मा के स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है **तदानीम्**=तब उस असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में **चितिशक्तिः**=जीवात्मा **यथा**=जैसे **कैवल्ये**=मोक्ष की अवस्था में होता है।

व्यासभाष्य व्याख्या-

तब उस असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद चित्त की शक्ति अर्थात् आत्मा अपने स्वरूप को जानने के उपरान्त परमात्मा के स्वरूप में मग्न हो जाता है, यह अवस्था कैवल्य अर्थात् मोक्ष की अवस्था जैसी होती है।

महर्षिदयानन्देनोक्त -

१. निरुद्धासती सा क्वावतिष्ठत इत्यत्रोच्यते - यदा सर्वस्माद् व्यवहारान्मनोऽवरुध्यते, तदास्योपासकस्य मनो द्रष्टुः सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते।

प्रश्न - जब वृत्ति बाहर के व्यवहारों से हटा के स्थिर की जाती हैं, तब कहाँ पर स्थिर होती हैं? इसका उत्तर यह है कि (तदा द्र.) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बाँध के रोक देता हैं, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उसी ओर चल के स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है।

-ऋग्वेद.भू., उपासनाविषय

२. जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध हो जाता है तब सबके द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति हो जाती है।

-सत्यार्थप्रकाश, नवम् समुल्लास

शेष अग्रिम अंक में.....

- गुरुकुल पौन्धा, देहरादून (उ.ख.)

श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् का प्रथम अधिवेशन हैदराबाद में सोल्लास सम्पन्न

❑ शिवदेव आर्य...✍

हैदराबाद : श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् का प्रथम राष्ट्रिय अधिवेशन श्री नरेन्द्रभवन, हैदराबाद में ३० सितम्बर २०१८ को आयोजित किया गया। श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् के निर्माण का प्रथम विचार-विमर्श अन्तर्राष्ट्रिय गुरुकुल महासम्मेलन हरिद्वार में किया गया था।

श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् का स्वरूप व कार्यप्रणाली क्या हो एतदर्थ हैदराबाद में प्रो. विट्ठल राव आर्य जी के सहयोग से प्रथम अधिवेशन का आयोजन किया गया। ३० सितम्बर २०१८ को प्रात: ८ बजे दैनिक यज्ञ किया गया, जिसके ब्रह्मा पण्डित सोमदेव शास्त्री (मुम्बई) रहे। श्री हरिकिशन वेदालङ्कार जी यज्ञ के ऋत्विक् रहे। यज्ञ के पश्चात् समस्त यजमानों को पूज्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी तथा स्वामी आर्यवेश जी ने आशीर्वाद देते हुए सभी के मंगलमय जीवन का आधार यज्ञ बताया।

पूज्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी, स्वामी आर्यवेश जी, स्वामी धर्मानन्द जी, डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा जी तथा साध्वी निर्मला योग भारती आदि ने दीप प्रज्वलित कर उद्घाटन सत्र का आरम्भ किया। इस अवसर पर कन्या गुरुकुल हैदराबाद की वेदपाठी कन्याओं ने वैदिक मंगलाचरण किया। उद्घाटन सत्र का आरम्भ प्रो. विट्ठल राव ने स्वागत भाषण से किया। सभी आगन्तुक विद्वान्-विदुषियों का स्वागत करते हुए गुरुकुल शब्द की व्याख्या की। गुरुकुल वह जीवन शैली है जिसको व्यक्ति जीता है। गुरुकुल का सम्पूर्ण उद्देश्य तभी सार्थक होता है जब गुरु और शिष्य मिलकर शिक्षा को अपने जीवन में व्यवहृत रुप देते हैं। कार्यक्रम की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनायें व्यक्त की। मुख्य अतिथि के रूप में माता निर्मला देवी वेदभारती जी ने अपने आत्मीय उद्गारों में कहा कि समस्त गुरुकुल स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा की देन हैं। अत: समस्त गुरुकुलों को स्वामी दयानन्दानुसार विद्या का पठन-पाठन कराना चाहिए। गुरुकुल से निकलने वाले ब्रह्मचारी पूर्णरूप से दयानन्द में निष्ठा रखने वाले होने चाहिए। अग्रिम वक्ता के रूप में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि गुरुकुलों से ही आर्यसमाज व वेदप्रचार-प्रसार का कार्य सम्भव है। आर्यसमाज में गुरुकुलों का कार्य बहुत लम्बे समय से रुका हुआ था किन्तु जुलाई २०१८ में हरिद्वार में आयोजित अन्तर्राष्ट्रिय गुरुकुल महासम्मेलन में समस्त गुरुकुलों को जाग्रत किया गया। जिसका बहुत सुन्दर व उत्साहवर्धक परिणाम के रुप में श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् का निर्माण हम सबके समक्ष उपस्थित हुआ है। गुरुकुलों में केवल संस्कृत मात्र पढ़ लेने से गुरुकुल का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता अपितु पूर्ण साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर वसुधैव कुटुम्बकम् व आर्य समाज को गति देना है तथा मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को परिवर्तित कर एक सभ्य नागरिक का निर्माण करना है। गुरुकुल शब्द के उच्चारण से आर्य समाज का नाम स्वत: ही आ जाता है अत: गुरुकुलों को आर्यसमाज को सुदृढ़ करने का कार्य करना चाहिए। इस परिषद् के माध्यम से महर्षि दयानन्द द्वारा प्रणित शिक्षा प्रणाली सुस्पष्ट होनी चाहिए, इसलिए इस परिषद् का नाम श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् रखा गया है। ये संस्था शिक्षा के जगत् में अद्वितीय हो। विश्वभर में जब कभी भी शिक्षा के लिए चिन्तन किया जाये तब इस संस्था की प्रमुख भूमिका हो। इस परिषद् के द्वारा ऐसे विद्वानों का निर्माण हो जो देश-दुनिया के लिए दिशा व दशा देने वाले हो सकें। स्वामी आर्यवेश जी के उद्बोधन के पश्चात् गुरुकुल आमसेना के संस्थापक आचार्य एवं परिषद् के संरक्षक स्वामी धर्मानन्द जी ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस परिषद् के संगठन को

मजबूत करने में पूरी शक्ति लगाकर सरकार द्वारा साधनों का लाभ लेकर अच्छे विद्वानों को तैयार करना चाहिए। दयानन्दकृत पाठ्यक्रम को चलाना और सभ्य समाज का निर्माण करना हमारा मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। स्वामी धर्मानन्द सरस्वती जी के उद्बोधन के पश्चात् पण्डित सोमदेव शास्त्री (मुम्बई) ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि इस परिषद् के निर्माण के पीछे सबसे बढ़ा उद्देश्य यह है - वर्तमान में गुरुकुल अपनी दिशा व दशा को भूल रहे हैं, उनको जागृत कर महर्षि दयानन्दोक्त शिक्षा से शिक्षित कर समाज में गुरुकुलों को स्थापित करना। सभी गुरुकुलों के लिए राष्ट्रियता से ओत-प्रोत, आर्य समाज के दस नियमों की व्याख्या सहित आदि विषयों से युक्त एक पाठ्यक्रम का निर्माण किया जायेगा। इस पाठ्यक्रम के अनुरूप ही राष्ट्रिय स्तर पर प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जायेगा, जिसमें मन्त्रोच्चारण, संस्कृतगीतिका, संस्कृत-हिन्दीभाषण, शास्त्रार्थ आदि विषयों का समावेश किया जायेगा। तत्पश्चात् गुरुकुल पौन्धा देहरादून के आचार्य एवं परिषद् के सहमन्त्री आचार्य डॉ. धनञ्जय जी ने परिषद् की सम्पूर्ण रूपरेखा को दर्शाया और कहा कि यदि इस परिषद् रूपी संगठन के माध्यम से जब कार्य किया जायेगा तब सभी के लिए बहुत ही सुगमता रहेगी। इसके साथ ही विभिन्न प्रस्तावों पर विचार व्यक्त किये-१.श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् नियमावली एवं पंजीकरण, २.वैदिक-सिद्धान्त-पाठ्यक्रम का संचालन, ३. पाठ्यक्रम-परीक्षा नियन्त्रक समिति, ४.प्रतियोगिताओं का आयोजन, ५. प्रतियोगिता आयोजन समिति, ६. गुरुकुल वैशिष्ट्य-कार्यप्रणाली का अध्ययन एवं सहयोग प्रस्ताव समिति, ७.राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार से गुरुकुल सहायतार्थ प्रस्ताव एवं विमर्श, ८.शासन द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पाठ्यपुस्तकों के समायोजन हेतु तत्सम्बन्धी अधिकारियों एवं सरकार से सम्बन्ध स्थापनार्थ विमर्श, ९. श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् संचालन हेतु अर्थ संग्रह प्रस्ताव आदि के विषय में चर्चा-परिचर्चा को प्रस्तुत करते हुए कार्यक्रम का संयोजन किया। परिषद् के उपरोक्त प्रस्तावों पर विचारार्थ आमन्त्रित करते गुरुकुल चोटीपुरा की आचार्या डॉ. सुमेधा जी को आमन्त्रित किया। आचार्या डॉ. सुमेधा जी ने कहा कि गुरुकुल में बालकों को सकारात्मक विचारों से युक्त करें। आधुनिक विषय अंग्रेजी, गणित, विज्ञान आदि पर भी संस्कृत के साथ-साथ जोर देने की आवश्यकता है। अग्रिम वक्त के रूप में गुरुकुल नोएडा के आचार्य डॉ. जयेन्द्र जी ने पाठ्यक्रम के विषय में जोर देते हुए सुझाव दिया कि आर्यसमाज के दस नियमों को, आर्याभिविनय को पाठ्यक्रम में संयोजित करना चाहिए। प्रतियोगिताओं में भी संस्कृत भाषण, मन्त्राक्षरी, कविसम्मेलनों का भी आयोजन करना चाहिए। साथ ही एक मीडिया प्रभारी तथा प्रवक्ता का चयन करना चाहिए। इस संगठन को कार्यरूप देने के लिए आर्थिक रूप से सबल होने की आवश्यकता है, अतः प्रत्येक गुरुकुल के लिए ११०० या ५१०० रुपये की वार्षिक सहयोग राशि निर्धारित करनी चाहिए। अग्रिम वक्ता के रूप में गुरुविरजानन्द स्मारक ट्रस्ट गुरुकुल करतारपुर के आचार्य उदयन जी ने पाठ्यक्रम के लिए सुझाव दिया कि पद्यात्मक पुस्तक का का भी संयोजन करना चाहिए। संस्कृत आकादमी द्वारा प्रकाशित आंग्लानुवाद युक्त संस्कृतवाक्यप्रबोध को भी स्थान देना चाहिए। सभी गुरुकुलों में सन्ध्या-यज्ञादि के मन्त्रों के अर्थों से भी अवगत कराना चाहिए। गुरुकुलों में विभिन्न प्रदेशों के छात्र-छात्रायें उपस्थित होते हैं, इनका हमें लाभ लेना चाहिए, एक भाषीय से दूसरे भाषीय को भाषा सिखने का प्रकल्प चलाना चाहिए। आचार्य उद्गीथ जी ने छात्रों को तकनीकी शिक्षा से युक्त होने के विषय में बताया। गुरुकुल कोसरंगी के आचार्य कोमल जी ने प्रस्ताव संख्या ८ के विषय में चर्चा की। गुरुकुल कांगड़ी की ओर से आये आचार्य योगेश जी ने कहा कि हमारे गुरुकुलों के छात्र बहारी छात्रों से दूर रहते हैं, इनको चाहिए कि ये बहारी छात्रों से वाद-प्रतिवाद कर गुरुकुलीयता की यशःपताका को उच्चस्थान दिलायें। आचार्य आनन्द प्रकाश जी ने परिषद् को कैसे सुदृढ़ किया

जा सकता है, इसविषय में अपने विचार व्यक्त किये। गुरुकुल झज्जर से आये आचार्य ज्ञानवीर जी ने कहा कि २०१२ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सभी को आदेशित करते हुए कहा गया था कि कक्षा-१२ से नीचे के छात्रों की परीक्षा विश्वविद्यालय नहीं लेगा, जिसकारण से महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक आर्षपाठविधि का बार-बार बाहर करने के लिए कह रहा है, इस विषय पर चिन्ता व्यक्त कर एक केन्द्रिय बोर्ड के गठन के लिए विचार व्यक्त किये। गुरुकुल नजीबाबाद की आचार्य प्रियंवदा ने भी गुरुकुलीय शिक्षा बोर्ड के गठन के लिए कहा। आर्ष पाठविधि के अनुरूप अध्ययन होगा तभी विद्यार्थी अष्टाध्यायी, काशिका, महाभाष्य जैसे ग्रन्थों का स्मरण करेंगे। गुरुकुल कांगड़ी से आये आचार्य डॉ. बिजेन्द्र जी ने गुरुकुल कांगड़ी में संचालित सी.बी.एस.सी. पाठ्यक्रम में आर्ष पाठ्यक्रम का संयोजन कैसे किया, इस विषय में चर्चा की। बदायूँ से आये आचार्य विजयदेव नैष्ठिक जी ने कहा कि गुरुकुलों की प्राथमिक स्तर पर स्थापना होनी चाहिए। गुरुकुल सासनी हाथरस की आचार्या डॉ. पवित्रा विद्यालङ्कार ने गुरुकुल सम्बन्धी समस्याओं का उजागर कर सामाजिक व आर्थिक स्तर पर गुरुकुलों का सहयोग करने के लिए परामर्श समीति का गठन करने का आग्रह किया। परस्पर गुरुकुल एक-दूसरे के गुणों का व्याख्यान तो करें किन्तु कोई बुराई या समस्या है तो उसको तद्सम्बन्धी व्यक्ति को सूचित करें न कि समाज में दुष्प्रचार करें। गुरुकुल रुड़की (हरयाणा) की आचार्या डॉ. सुकामा जी ने महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक में संचाल्यमान आर्षपाठविधि की भावी समस्या के समाधानार्थ परिषद् के उच्चस्तरीय अधिकारियों से निवेदन किया कि विश्वविद्यालय के प्रशासन से जाकर मिलना चाहिए। परिषद् द्वारा संचालित पाठ्यक्रम के आधार पर राज्यों के अनुसार पेपरों की वैकल्पिक व्यवस्था होनी चाहिए। भारतवर्ष के सभी गुरुकुल एक पाठ्यक्रम का अध्ययन करें तदर्थ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सभी गुरुकुलों को सम्बद्ध कराना चाहिए। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री प्रकाश आर्य जी ने कहा कि हमारे गुरुकुल प्रत्येक व्यक्ति व परिवार से जुड़ने चाहिए। जो स्नातक गुरुकुल से शिक्षित होकर निकलें वे दयानन्द की भावना से ओत-प्रोत होकर समाज में आर्य समाज की गतिविधियों को फैलाने के लिए कार्य करना चाहिए। हमारा लक्ष्य है कि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अर्थात् सम्पूर्ण संसार को आर्य बनाना है। इस प्रयास के लिए गुरुकुलों को कृतसंकल्पित होना चाहिए। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने कहा कि गुरुकुलों को सरकार की ओर से मान्यता मिलनी चाहिए। परिषद् के मन्त्री श्री आनन्द कुमार जी (आई.पी. एस.) ने कहा कि इस परिषद् के द्वारा एक बेवसाईट का निर्माण किया जाये, जिसे हर कोई पढ़े। गुरुकुलों में टेक्नोलॉजी का भरपूर प्रयोग होना चाहिए। कानूनी जानकारी से भी परिचित होना चाहिए। क्योंकि विधर्मी लोग नानाविध प्रकारों से गुरुकुलों को बदनाम करने का षड्यन्त्र करते हैं। सभी गुरुकुलों में सी.सी.टी.वी. कैमरों को परिसर में लगाना चाहिए। स्वयं के स्तर पर क्षेत्रीय प्रशासनिक अधिकारियों, एड्वोकेट आदि उच्चस्तरीय अधिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। इसके साथ ही प्रथम सत्र का समापन किया गया।

द्वितीय सत्र का प्रारम्भ कन्या गुरुकुल शिवगंज की स्नातिका कु. कविता ने ईशभक्ति भजन से किया। हैदराबाद स्थित निगमनीड़म् गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने मन्त्र के विभिन्न पाठों के द्वारा मङ्गलाचरण किया। आचार्य सुशील जी ने परिषद् के पाठ्यक्रम के विषय में चर्चा की। अग्रिम वक्ता के रूप में गुरुकुल रुद्रपुर की आचार्या डॉ. धारणा जी ने वर्तमान गुरुकुलीय दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि आज हमें विचार करना चाहिए कि गुरुकुल के छात्र पूर्व मध्यमा व उत्तरमध्यमा करने के उपरान्त गुरुकुलों को छोड़ देते हैं? इसके निराकरण के लिए उपाय सुझाने चाहिए। आचार्या डॉ. धारणा जी के विचारों के पश्चात् कन्या गुरुकुल शिवगंज की आचार्या डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि गुरुकुल के आचार्यों को आर्ष शिक्षा के प्रति

दृढ़संकल्पित होना चाहिए। पढ़ाने वाले अध्यापक योग्य हों, वे निरन्तर गुरुकुल के हित का बोध करने वाले हों। साथ ही समस्त आचार्यों को प्रशिक्षण भी प्रदान कराया जाये। अग्रिम वक्त के रूप में स्वामी वैश्वानन्द जी ने कहा कि बालक बिना दण्ड के समझते नहीं है, अत: उचित दण्ड की भी प्रक्रिया हमें अपनाये रखनी चाहिए। वाराणसी से आयी आचार्या गायत्री जी ने कहा कि पाठ्यक्रम में छ: वेदाङ्गों को भी स्थान देना चाहिए। कन्या गुरुकुल जसात से आये शास्त्री जी ने कहा कि शारीरिक-क्रीड़ा प्रतियोगिताओं के आयोजनार्थ सम्पूर्ण व्यय गुरुकुल जसात की ओर से किया जायेगा। अग्रिम वक्ता के रूप में आचार्य भद्रकाम वर्णी जी ने परिषद् के पाठ्यक्रम के विषय में अपने विचार रखे। उत्तरप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री स्वामी धर्मेश्वरानन्द जी ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि परिषद् के इस पाठ्यक्रम में पञ्चमहायज्ञविधि का विधान होना चाहिए। सभी गुरुकुलों का निरीक्षण भी होना चाहिए, एतदर्थ एक निरीक्षण मण्डल का गठन करना चाहिए। इस परिषद् में यदि केन्द्रिय शब्द जोड़ लिया जाये तो अत्युत्तम रहेगा। इस परिषद् के माध्यम से केन्द्रिय बोर्ड का गठन कर समस्त गुरुकुलों को मान्यता देनी चाहिए। समस्त छोटे व बड़े गुरुकुलों को साथ लेकर चलना चाहिए। आचार्य शम्भुमित्र शास्त्री जी, कन्या गुरुकुल नोएडा की आचार्या आदेश जी, राजस्थान से डॉ. सीमा जी, गुरुकुल भादस के आचार्य हरिनिवास जी, आचार्या सविता जी आदि ने भी अपने विचार रखे। मानव सेवा प्रतिष्ठान के श्री रामपाल शास्त्री जी ने शास्त्रीय स्पर्धा के आयोजन लिए आर्थिक बजट देने की स्वीकृति दी एवं समस्त गुरुकुलों के आचार्य/आचार्यों को सम्मानित करने को कहा। वैदिक मिशन मुम्बई के अध्यक्ष पण्डित सोमदेव शास्त्री जी ने कहा कि परिषद् का यह पाठ्यक्रम सभी गुरुकुलों को सैद्धान्तिक रूप से संगठित रखेगा। डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री जी ने कहा कि भारतवर्ष में सर्वत्र एक ही आर्ष पाठ्यक्रम लागू हो, एतदर्थ हम सबको गुरुकुल कांगड़ी को केन्द्रित करके चलना चाहिए। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सभी गुरुकुलों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। यह सब तभी संभव हो सकता है जब गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आर्यसमाजी विचारधारा के विद्वान् व्यक्ति को कुलपति बनाया जाये। कुलपति पद के लिए प्रो. रुपकिशोर शास्त्री जी के नाम का भी उल्लेख किया। इसके पश्चात् सभी आचार्य व आचार्यों का परिचय कराया गया। परिचय के पश्चात् स्वामी आर्यवेश जी ने कहा कि गुरुकुलों से निकलने वाले विद्यार्थी आर्यसमाजी विचारधारा से ओत-प्रोत होकर अपने व्यवहार से समाज के परिवेश परिवर्तित करने का प्रयास करें। अन्त में परिषद् के अध्यक्ष स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी का अध्यक्षीय भाषण हुआ, जिसमें स्वामी जी ने अपना व्याख्या **'विद्या सन्धि: प्रवचनं संधानम्'** इस पक्ति से आरम्भ किया और कहा कि इस पंक्ति में ही परिषद् का उद्देश्य छिपा हुआ है। आज जो समस्यायें गुरुकुलों में बतलायी जा रही हैं जैसे - विद्यार्थी अच्छे नहीं हैं, विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक ज्ञान नहीं है, छात्र योग्य नहीं निकल पा रहे हैं, इस समस्या का समाधान यदि कहीं है तो वह गुरुकुल के आचार्य व आचार्यों से ही है। गुरुकुल के आचार्य व आचार्यों को सभी कार्यों में आगे आना होगा। जब गुरुजन शिष्यों को शतप्रतिशत देगा तो समस्या आ ही नहीं सकती। गुरुजन स्वयं स्वाध्याय की प्रवृत्ति को बढ़ायें तथा विद्यार्थियों को भी स्वाध्याय के लिए प्रेरित करें। प्रात:काल ब्रह्ममूर्हुत में गुरु व शिष्य दोनों को ही आवश्यक रूप से उठना चाहिए। प्रात:कालीन सत्र में विद्यार्थियों को अष्टाध्यायी आदि मूल ग्रन्थों का स्मरण कराना चाहिए। गुरुकुल गौतम नगर में एक संन्यासी स्वामी सुव्रतानन्द जी रहा करते थे, जो स्वामी आत्मानन्द जी के शिष्य थे। स्वामी सुव्रतानन्द जी उस समय ७५ वर्ष के थे, उस समय उन्हें यजुर्वेद कण्ठाग्र था। स्वामी जी मेरे साथ सहयोग के लिए रह रहे थे, एक दिन स्वामी जी ने मुझे कहा कि मुझे कोई काम बतलाओ तो मैंने निवेदन किया कि स्वामी जी आपको

यजुर्वेद कण्ठाग्र है, आप बच्चों को वेद स्मरण करा दो। स्वामी सुव्रतानन्द जी का वेदपाठ याद कराने का जो तरीका था, वह अद्वितीय था। वे प्रातःकाल वेद याद करने के लिए दो विद्यार्थियों को बुला लेते थे और उन विद्यार्थियों को व्यायाम कराते हुए वेदमन्त्रों को सुनाते थे, इस प्रकार से यह क्रम निरन्तर चलता रहा और ६ महिनों में उन दोनों विद्यार्थियों को वेद याद हो गया। इस क्रम को देखते हुए अन्य विद्यर्थियों में उत्साह आने लगा और छुप-छुप कर वेद को याद करने लगे। छुप-छुपकर वेद याद करने वालों में डॉ. धर्मेन्द्र कुमार भी थे, जब इनको आधा वेद याद हो गया तब मुझसे आकर कहा कि आचार्य जी! मेरा वेद सुन लो। तो मुझे यह देखकर बहुत अच्छा लगा। इस प्रकार से यह वेद याद करने का क्रम चलने लगा और उस समय में ३६ विद्यार्थियों ने वेद याद किया। इस प्रकार प्रत्येक गुरुकुल के आचार्य व आचार्यों को वेद-विद्या के पठन-पाठन के लिए प्रत्येक काम को छोड़कर दृढ़ परिश्रम करने की आवश्यकता है। मेरे लिए बहुत कार्यक्रम आते हैं, प्रायः मैं सबको मना ही करता हूँ। यदि किसी कार्यक्रम के लिए अधिक दबाव के कारण मैं हाँ भी कह देता हूँ तो मैं साफ कह देता हूँ कि यदि आपके कार्यक्रम के बीच में गुरुकुल का कोई काम आ जाता है तो मैं नहीं आ सकता। इसलिए हम सब को गुरुकुल के विद्यार्थियों की उन्नति के लिए सब कामों को छोड़ देना चाहिए। हम सबका मुख्य उद्देश्य गुरुकुल का सफलतम संचालन करना है। आचार्य और विद्यार्थी का सम्बन्ध विद्या से है। आचार्य पूर्व रूप होता है, विद्यार्थी उत्तर रूप और विद्या दोनों को जोड़ने का कार्य करती है। यदि हम सब गुरुकुल वाले इस पंक्ति को अपना ध्येय बना लें तो गुरुकुलों की उन्नति निश्चित रूप से होगी। आर्य समाजों में बड़े-बड़े कार्यक्रम होते हैं तो हम आचार्यों को कहा जाता है कि आप दो बस भर कर विद्यार्थियों को ले आना, आदि-आदि...। तब तो उनके कार्यक्रम की शोभा बढ़ती है किन्तु जब उनका काम निकल जाता है तब हम गुरुकुल वालों को पूछते तक नहीं। जब हम विद्या के प्रति अनुरागी होंगे तब सभी समाज वाले हमारी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखेंगे। इस प्रकार से हम अपने गुरुकुलों को चलाने में पूर्ण ईमानदारी से कार्य करें। अन्त में इस सम्पूर्ण कार्यक्रम के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा तेलंगाना व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री प्रो. विट्ठल राव जी तथा समस्त सभागार का हार्दिक साधुवाद व धन्यवादज्ञापन किया। प्रो. विट्ठल राव जी ने सभी का आचार्य, आचार्यों का सम्मान करते हुए धन्यवाद ज्ञापन कर शान्तिपाठ के साथ कार्यक्रम का समापन किया।

- गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

प्रत्यक्षाप्तोपदेशाभ्यामनुमानेन वा पुनः।
बोद्धव्यं सततं राज्ञा देशवृत्तं शुभाशुभम्॥
चारैः कर्मप्रवृत्त्या च तद्विज्ञाय विचारयेत्।
अशुभं निर्हरेत् सद्यो जोषयेच्छुभमात्मनः॥

- महाभारत, अ.-१४५

प्रत्यक्ष देखकर, विश्वसनीय पुरुषों से जानकारी लेकर अथवा युक्तियुक्त अनुमान करके शासक को सदा देश के शुभ-अशुभ का हाल जानते रहना चाहिए। गुप्तचरों द्वारा और देश में हो रही हलचलों से शुभ और अशुभ स्थिति का आकलन करके शासक को अशुभ शक्ति का तत्काल निवारण करना चाहिए और अपने लिए शुभ स्थिति लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीमद् दयानन्द वैदिक गुरुकुल परिषद् के प्रथम अधिवेशन में आचार्यगणों को सम्मान किया गया

दिल्ली के पूर्व पुलिस डिप्टी कमिश्नर डॉ. ज्ञानेन्द्र अवाना का गुरुकुल पौन्धा में आगमन

पंजीयन संख्या : UTTBIL/2008/23546 डाक पंजीयन नं. : UA/DO/DDN/397/2016-2018

पतंजलि®

प्रकृति का आशीर्वाद

करोड़ों देशवासियों का
भरोसेमन्द हर्बल टूथपेस्ट

दन्त कान्ति

दन्त कान्ति के लाभ

✓ लौंग, बबूल, नीम, अकरकरा, तोमर, बकुल आदि बेशकीमती जड़ी बूटियों से निर्मित दन्त कान्ति, ताकि आपके दाँतों को मिले लंबी उम्र व असरदार प्राकृतिक सुरक्षा।

✓ पायरिया, मसूड़ों की सूजन, दर्द व खून आना, सेंसिटिविटी, दुर्गन्ध एवं दाँतों के पीलेपन आदि को दूर करे।

✓ कीटाणुओं से लम्बे समय तक बचाकर दे दाँतों को प्राकृतिक सुरक्षा कवच।

पूरी दुनिया अब नैचुरल प्रोडक्ट्स को अपना रही है
आप भी पतंजलि के नैचुरल प्रोडक्ट्स अपनाइए और प्रकृति का आशीर्वाद पाइए

आवाहन– राष्ट्र के जागरुक व्यापारियों व ग्राहकों से हम विनम्र आवाहन करते हैं कि करोड़ों देश भक्त भारतीयों की तरह, आप भी पतंजलि के उत्पादों को अपनी दुकानों व दिलों में सर्वोच्च प्राथमिकता देकर जन–जन तक पहुँचाएं और देश की सेवा व समृद्धि में योगदान दें। जिससे महात्मा गाँधी, भगत सिंह व राम प्रसाद बिस्मिल आदि सभी महापुरुषों के स्वदेशी अपनाने के सपने को मिलकर साकार कर सकें।

पतंजलि आयुर्वेद के लगभग 500 उत्पाद हैं, ये शुद्ध खाद्य उत्पाद व हर्बल सौन्दर्य उत्पाद हमारे पतंजलि स्टोर्स के साथ ओपन मार्केट की दुकानों पर भी उपलब्ध हैं।

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक एवं स्वामी : आचार्य धनञ्जय द्वारा श्रीमद्दयानन्द आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुल, दून वाटिका-२ पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित एवं जयरति प्रिन्टिंग प्रेस, ३५ कांवली रोड, देहरादून से मुद्रित।
मुद्रण तिथि - ३ अक्टुबर २०१८ :: डाक प्रेषण तिथि - ८ अक्टुबर २०१८